सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

एक सौ पंद्रहवीं रिपोर्ट

कर न्यायालयों के संबंध में

1986

अ०स०सं०फा० 2(6)/85-वि०आ०

श्री अशोक सेन,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-1

28 अगस्त, 1986

प्रिय विधि और न्याय मंत्री,

मुझे वर्तमान विधि आयोग की दूसरी रिपोर्ट (विधि आयोग की एक सौ पन्द्रहवीं रिपोर्ट) अग्रेषित करने में अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस रिपोर्ट में प्रत्यक्ष करों, तथा अप्रत्यक्ष करों के उद्ग्रहण और संग्रहण तथा निर्यात और आयात से संबंधित विधान के प्रवर्तन से उत्पन्न विरोधों और संविवादों को निपटाने वाले न्यायालयों के सोपानी व्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों की बाबत सुझाव दिए गए हैं।

आपको यहजान कर प्रसन्नता होगी कि आयोग उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय का कार्यभार हल्का करने की दृष्टि से साधन और साध्यों का पता लगाने के लिए निरंतर अनुसंधान कर रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के अनेक साधनों में से न्यायिक प्रशासन का विशाखन भी एक साधन है। वर्तमान विधि आयोग को न्यायिक सुधारों की सिफारिश करने का कार्य सौंपते समय यह सुझाव दिया गया था कि आयोग उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा घटाने के लिए न्यायिक सोपानी व्यवस्था में, अन्य परिवर्तनों के साथ-साथ अन्य नई श्रेणियां या पद्धतियां स्थापित करके न्याय प्रशासन प्रणाली के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता की समीक्षा करे। न्याय प्रशासन के विशाखन के लिए अपनी खोज के दौरान आयोग को इस कटु सत्य का पता लगा कि कर संबंधी मुकदमों में कई प्रक्रमों पर अपीलें की जा सकती हैं। इस कारण मुकद्दमेबाजी, व्यावहारिक रूप से, कभी समाप्त नहीं हो पाती है और उसके उच्चतर न्यायालयों में पहुंचने के अनुक्रम में सरकार की अरबों रुपयों की आय, न्यायालयों द्वारा दिए गए अंतरिम आदेशों के कारण, रुकी हुई है।

तद्नुसार, आयोग ने कर संबंधी मुकदमों से सम्बद्ध सोपानी अधिकरणों और न्यायालयों के विद्यमान श्रेणीबद्ध तंत्र की समीक्षा की है। विलंब उच्च न्यायालय स्तर पर पाया गया है। तदानुसार, आयोग ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के लिए एक केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करने की संभावनाओं की समीक्षा की है।

मैं आपका ध्यान आपके तारीख 5 मई, 1986 के अ.स. 1914/एम एल जे/ 86 की ओर दिलाना चाहूंगा जिसके साथ आपने भारतीय निर्यात संगठन महासंघ, पश्चिमी क्षेत्र के अध्यक्ष श्री रामू एस० देवड़ा के तारीख 23 अप्रैल, 1986 के पत्र की एक प्रति भेजी है जिसमें आपका ध्यान विभिन्न आयात/निर्यात विधियों के अधीन उत्पन्न होने वाले विवादों के निपटारे में होने वाले विलंब की ओर आकर्षित किया गया है। आपने आयोग से अनुरोध किया था कि वह कर न्यायालयों विषयक अपनी सिफारिशें करते समय इस पहलू पर भी विचार करे।

रिपोर्ट का अध्याय 4 निर्यात/आयात संबंधी विभिन्न विधियों के अधीन उत्पन्न विवादों और उनके निपटारे के ढंग के संबंध में है। परिणामतः, आपके द्वारा किए गए निर्देश पर रिपोर्ट उक्त अध्याय में समाविष्ट है।

सादर।

भवदीय
ह०/-
(डी० ए० देसाई)

संलग्न : रिपोर्ट

86-M/P(N)566MofLJ&CA—1

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. भारत सरकार एक पृथक् न्यायिक सुधार आयोग स्थापित करने पर विचार कर रही थी। फरवरी, 1986 में, भारत सरकार ने विधि आयोग को न्यायिक सुधारों के संबंध में अध्ययन करने और अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा। न्यायिक सुधारों का अध्ययन करने के संदर्भ में निश्चित किए गए विचारार्थ विषय, विधि आयोग को भेजे गए। विधि आयोग ने विचारार्थ विषयों के प्राप्त होते ही, इस बाबत अपना कार्यक्रम तैयार किया और तद्नुसार कार्य करना आरंभ कर दिया। न्यायिक प्रणाली में सुधार का सुझाव देने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। सुधारों की बाबत सिफारिशें करने का कार्य आरंभ करने के पूर्व, यह आवश्यक था कि वर्तमान न्याय प्रशासन की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाए, अर्थात्, यह जान लिया जाए कि उसमें क्या-क्या कमियां, विकृतियां और कमजोरियां हैं उसकी शक्ति और प्रतिधारणीय सामर्थ्य कितनी है, वे कारण क्या हैं जिनसे वर्तमान क्षेमपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई है, क्या वर्तमान प्रणाली में सुधार करने से स्थिति सुधर सकती है या उसकी पूर्णतः या अंशतः पुनर्संरचना करना अपरिहार्य है। किए जाने वाले परिवर्तन न केवल नए और उपयोगी हों अपितु परिणामोन्मुख भी हों। अतः न्यायिक प्रशासन में सुधार के प्रश्न पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना अपरिहार्य है। जब तक रोग का ठीक-ठीक निदान नहीं हो जाता उसका उपचार, यदि कोई बताया जाए, निरर्थक सिद्ध हो सकता है।

1.2. विधि आयोग ने ऐसे अनेक कारणों का पता लगाया है जिनमें से सभी या किसी के कारण वर्तमान न्याय प्रशासन भयावह, अत्यंत खर्चीला, असुलभ, असम्यक् रूप से औपचारिक, उबाऊ और विलंबकारी बन गया है। इनमें से प्रत्येक कारण न्यायिक प्रशासन को नष्ट करने में न केवल व्यक्तिगत रूप से अत्यंत खतरनाक साबित हुआ है अपितु उनका समग्र प्रभाव यह हुआ है कि न्याय प्रशासन उन धनिकों और संपन्न लोगों का प्रश्रय बन गया है जो उसका प्रयोग साधारणतः व्यर्थ की मुकदमेबाजी के लिए करते हैं। निर्धन व्यक्ति आधुनिक मुकदमेबाजी के लिए धन जुटाने में असमर्थ है। उसे न्याय प्रशासन के लाभ से पूर्णतः वंचित कर दिया गया है। न्यायिक सुधार तभी प्रभावी माने जा सकते हैं जब उनसे न्यायिक पद्धति लचीली, त्वरित, कम खर्चीली, परिणामोन्मुखी और सुलभ बन जाए। न्यायिक सुधारों के अध्ययन के संदर्भ में विचारार्थ विषयों का प्रारूपण करते समय इन योगदायी सभी बातों को ध्यान में रखा गया है। जिससे कि प्रत्येक के बारे में कोई निश्चित और पृथक रिपोर्ट दी जा सके।

1.3. विचारार्थ-विषय में मद सं० 1(iii) और 2 इस प्रकार हैं–

"1. (i) ——————————

(ii) ——————————

(iii) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा को घटाने के लिए सोपानीन्यायिक प्रणाली में कुछ अन्य शक्तियां या पद्धतियां स्थापित करके,
न्याय प्रशासन प्रणाली के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता।

2. ऐसे विषय जिनके लिए संविधान के भाग 14क में यथापरिकल्पित अधिकरणों (सेवा अधिकरणों को अपवर्जित करते हुए) के शीघ्र स्थापित किए जाने की आवश्यकता है और उनके स्थापन और कार्यकरण से संबंधित विभिन्न विषय।"

1.4. विषय सं० 1(iii) की उत्पत्ति उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों की बढ़ती हुई संख्या के कारण हुई है। न्याय प्रशासन में किसी प्रस्तावित सुधार के लिए, अन्य बातों के साथ, इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मामलों के निपटारे की वर्तमान प्रणाली में, बकाया मामलों की संख्या निरन्तर बढ़ते रहने की प्रवृत्ति अंतर्विहित है क्योंकि संस्थित और निपटाए गए मामलों के बीच कोई सामंजस्य नहीं है। तद्नुसार विधि आयोग से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में कार्य की मात्रा के और उनको निपटाने में वर्तमान प्रणाली की अक्षमता के प्रश्न के संबंध में न्यायालयों के वर्तमान तंत्र की समीक्षा करने के लिए कहा गया है। उपसाध्य के रूप में, विषय सं० 2 द्वारा विधि आयोग से अपेक्षा की

गई है कि वह संविधान के भाग 14क में यथापरिकल्पित अधिकरणों की स्थापना के प्रश्न की समीक्षा करे जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में कार्य की मात्रा घटाने की दृष्टि से न्याय प्रशासन का विशाखन किया जा सके।

1.5. न्याय प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य समाज में उत्पन्न विवादों के निपटारे के लिए तंत्र की व्यवस्था करना है। विभिन्न प्रकार के विवादों के निपटारे के लिए विभिन्न न्यायालय स्थापित किए गए हैं उदाहरणार्थ, सिविल न्यायालय, यांत्रिक न्यायालय, श्रम न्यायालय, कर अधिकरण आदि। विशेष विवादों के निपटारे के लिए विशेष रूप से परिकल्पित विशेष न्यायालय उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जो इन विशिष्ट प्रकार के विवादों में निपटारा चाहते हैं।

संविधान द्वारा यथापरिकल्पित

न्याय प्रशासन

1.6. भारत के संविधान में परिकल्पित न्यायिक प्रशासन एकीकृत पिरामिडी संरचना है। विभिन्न नामों से कार्यरत आधार स्तरीय न्यायालय न्याय चाहने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की, उनके विवादों के संबंध में, आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। साधारणत: प्रत्येक शाखा में न्यायालयों का एक सोपानी तंत्र है। प्राधिकृत रूप से कहा जाए तो कुछ वर्गों में, उदाहरणार्थ प्रत्यक्ष कर विधियों में, अपीलें कई प्रक्रमों में की जा सकती हैं। और कुछ अन्य वर्गों में, जैसे दांडिक मामलों में, वे बहुत ही कम प्रक्रमों में की जा सकती है। संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की स्थापना का उपबंध है। उच्च न्यायालय की अधिकारिता इस प्रकार निश्चित की गई है कि विभिन्न न्यायालयों के विनिश्चयों से व्यथित कोई भी व्यक्ति प्रतितोष के लिए उसकी अधिकारिता का आश्रय ले सके। व्यथित पक्षकार सिविल अधिकारिता का अवलंब लेकर, उच्च न्यायालय में यथास्थिति, पहली अपील या दूसरी अपील कर सकता है। आपराधिक मामलों में, व्यथित व्यथित यथास्थिति, अपील या पुनरीक्षण याचिका द्वारा उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय ले सकता है। प्रत्यक्ष करों के मामले में व्यथित व्यक्ति निर्देश के रूप में उच्च न्यायालय तक पहुंच सकता है जैसा कि आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 में, दान-कर अधिनियम, 1958 की धारा 26, धन-कर अधिनियम, 1957 की धारा 27, सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130, आदि में उपबंधित है। इसी प्रकार व्यथित व्यक्ति मूल अधिकारों के भंग की शिकायत या किसी अन्य प्रयोजन के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आश्रय ले सकता है। न्याय प्रशासन की इस सोपानी संरचना का परिणाम यह है कि प्रत्येक सारगर्भित प्रकार का विधिक विवाद उच्च न्यायालय पहुंच जाता है। यदि कार्य-सरोवर में अनेक स्रोतों से कार्य आता हो और उसका निपटारा अधिक गति से न हो किन्तु समान गति से नहीं होता है तो यह निश्चित है कि उस सरोवर में कार्य निरन्तर जमा होता जाएगा। अनुभव से पता चलता है कि मामलों के संस्थित किए जाने और निपटारे के बीच उचित तालमेल नहीं रहा है।

1.7. न्यायिक प्रशासन में उच्चतम न्यायालय का स्थान सर्वोच्च है। उसे तरकशयुक्त प्रहरी कहा गया है। उसकी अधिकारिता इतनी व्यापक है कि वह किसी न्यायिक या न्यायिक कल्प या प्रशासनिक अधिकरण द्वारा किए गए अन्याय को, कार्रवाई करके, रोक सकता है। भारत के उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब ऐसा कोई भी व्यक्ति ले सकता है जो उच्च न्यायालय या किसी अधिकरण के विनिश्चय से व्यथित है। संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा भारत के उच्चतम न्यायालय को, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी मद या मामले में पारित किए गए या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री, अवधारण, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत दी गई है। सभी ने यह माना है कि भारत के उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता, विश्व के किसी भी देश के उच्चतम न्यायालय की तुलना में, व्यापक है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय को, मूल अधिकारों के अतिक्रमण के मामलों में प्रतितोष चाहने वाले व्यक्तियों के लिए, मूल अधिकारिता प्रदान की गई है और उसकी अधिकारिता की व्यापकता को नापा जा सकता है।

1.8. भारत के संविधान में अधिकार-पत्र (संविधान का भाग 3) जोड़ देने से देश भर में परिवर्तन की आंधी आ गई। अपने अधिकारों के प्रति चेतना या जागरूकता के परिणामस्वरूप हर व्यक्ति अपने

को दूर करने के प्रयोजन के लिए स्थापित किया गया है। परिणामत: मुकदमेबाजी में वृद्धि हुई। हर वर्ष न्यायालयों में दायर किए जाने वाले मामलों की संख्या बढ़ती गई। स्वतंत्रता से पूर्व विद्यमान न्यायालय-व्यवस्था अपनी उसी सुस्त प्रक्रिया के अनुसार कार्यशील रही जो उपनिवेशकाल में प्रचलित थी। दायर किये जाने वाले मुकदमों की संख्या और निपटाये जाने वाले मुकदमों की संख्या के बीच अंतर बढ़ता गया।

1.9. स्वतंत्र भारत को, संविधान के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अनेक विधियां अधिनियमित करनी थीं। औद्योगीकरण पर जोर देने वाली आर्थिक योजना का ध्यान, देश में विकास कार्यक्रम के लिए उपलब्ध स्रोतों पर केन्द्रित होना ही था। राजस्व के प्रमुख स्रोत के रूप में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का बढ़ाया जाना निश्चित था। आय-कर अधिनियम का विस्तार जो 1947 तक देश के बहुत कम लोगों तक सीमित था जो हर वर्ष बढ़ता गया। धन-कर अधिनियम वर्ष 1957 में, दान-कर अधिनियम वर्ष 1958 में और भाग्यहीन संपदा-शुल्क अधिनियम वर्ष 1953 में अधिनियमित हुए। केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की पहली अनुसूची जिसमें उन उत्पाद-शुल्क माल को विनिर्दिष्ट किया गया है जिन पर उत्पाद-शुल्क उद्गृहीत किया जाता है और सीमा-शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की पहली अनुसूची के अध्याय हर वर्ष व्यापकतर होते गए। कर विधियों का व्यापक विस्तार और कर का संदाय न करने या यथासंभव कम संदाय करने की ज्ञात मानवीय प्रकृति या अधिकथित वसूली करने की प्रवृत्ति के कारण विधि की इस शाखा में मुकदमों का प्रत्यक्ष अम्बार लग गया।

1.10. सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए और शोषण समाप्त करने के लिए कई श्रम विधियां अधिनियमित की गईं जो कार्य की शर्तों को सुधारने के लिए थीं। विभिन्न श्रम विधियों के अधीन अनुतोष प्राप्त करने के लिए बड़ी संख्या में श्रम न्यायालय और औद्योगिक अधिकरण स्थापित किए गए। संगठित औद्योगिक श्रमिकों ने अनुतोष प्राप्त करने के लिए ऐसे अधिकरणों के समक्ष अनेक अनुयोग आरंभ किए। औद्योगीकरण की गति बढ़ने के साथ-साथ संगठित श्रमिकों की शक्ति में भी वृद्धि हुई और परिणामत: शिक्षित बेरोजगारी की वृद्धि के साथ श्रम और औद्योगिक अधिकरणों के समक्ष बड़ी संख्या में अनुयोग आने लगे।

1.11. उच्चतर शिक्षा की सुविधा, वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश चाहने वालों की संख्या के अनुरूप उपलब्ध नहीं कराई गई। संविधान के अनुच्छेद 15 के अधीन राज्य द्वारा की गई सकारात्मक कार्रवाई से गुणता के पक्षधरों और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्ग के अन्य व्यक्तियों के पक्ष में स्पष्ट विभेद के समर्थकों के बीच विरोध उत्पन्न हुआ। उच्चतर शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश हर वर्ष ही होता है इसलिए इस संबंध में अनुतोष और प्रतितोष पाने के लिए हर वर्ष अनेक अनुयोग आरंभ किए गए।

1.12. सर्वांगीण लिखित संविधान उसके उपबंधों के भिन्न-भिन्न निर्वचनों का एक लाभप्रद स्रोत है। संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में मामलों की विनिर्दिष्ट प्रगणना और उसके साथ विधायी और कार्यपालक कार्यों के न्यायिक पुनरीक्षण की शक्ति के परिणामस्वरूप नए और अब तक अज्ञात प्रकृति के मुकदमें सामने आए हैं। केन्द्रीय या राज्य विधान के पारित होते ही, न्यायालय में यह अभिकथन कर दिया जाता है कि ऐसा विधान विभिन्न आधारों पर जिसमें विधायी अक्षमता भी सम्मिलित है सांविधानिक दृष्टि से अविधिमान्य है।

1.13. स्वतंत्रता प्राप्त होते ही संविधान में मूल अधिकारों के समावेश तथा अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय को और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करने के परिणामस्वरूप, अनेक याचिकाएं फाइल की गईं जिनमें मूल अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत की गई थी। अनुच्छेद 31 के निकाले जाने तक जिसमें अनुच्छेद 19(1)च के साथ पठित संपत्ति के मूल अधिकार को सम्मिलित किया गया था, राज्य द्वारा अधिनियमित प्रत्येक सुधार संबंधी कानून को संपत्ति के मूल अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी जाती थी। नया जीवन प्रदान करने की दृष्टि से रुग्ण उद्योगों का अर्जन भी न्यायालय की संवीक्षा से नहीं बच सकता था।

1.14. इसमें पहले बताई गई स्थिति का परिणाम यह निकला कि उच्च न्यायालय के समक्ष आने वाले और, अनुच्छेद 136 के द्वारा उच्चतम न्यायालय तक पहुंचाने वाले वादों और संविवादों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। प्रत्येक उच्च न्यायालय में लंबित मामलों की संख्या हर वर्ष, निरपवाद

रूप से, बढ़ती गई। जैसे-जैसे लंबित मामलों की संख्या बढ़ती गई, कार्रवाई आरंभ करने और उसका अंतिम निपटारा होने की बीच की अवधि भी बढ़ती गई। आज यह कहा जा सकता है कि मुकदमेंबाजी की प्रत्येक शाखा में, यदि मामला निम्नतम न्यायालय से शीर्ष स्थ न्यायालय तक जाता है तो उसमें औसतन 15 से 20 वर्ष तक का समय लग जाता है। प्रक्रिया को जिसे विलंब का मूल कारण कहा जाता है, सुव्यवस्थित करने और उच्च न्यायालयों में कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने के छिटपुट प्रयासों से बकाया मामलों की बदली हुई संख्या में कोई कमी नहीं आई। एक आम नारा यह बन गया है कि न्याय में विलंब न्याय से वंचन है। इससे न केवल न्यायपालिका बल्कि संसद भी हिल उठी। संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976 के साथ संलग्न उद्देश्य और कारणों के कथन के पैरा 5 में इस स्थिति का जायजा लिया गया है उसमें कहा गया है :–

> "उच्च न्यायालय में लंबित मुकदमों की संख्या घटाने के लिए, सेवा संबंधी, राजस्व संबंधी और सामाजिक-आर्थिक विकास और प्रगति के परिप्रेक्ष्य में विशेष महत्व के कुछ मामलों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित करने के लिए यह समीचीन है कि इनको निपटाने के लिए प्रशासनिक और अन्य अधिकरण बनाए जाएं। किन्तु संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे मामलों के संबंध में उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता जैसी है वैसी ही बनी रहेगी। अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता में भी कुछ उपांतर करना आवश्यक है।"

1.15. यह संकल्पना कि उच्च न्यायालय, जो राज्य स्तर का उच्चतम न्यायालय है, अपनी व्यापक अधिकारिता के अधीन, विभिन्न स्रोतों से उसके समक्ष आने वाले मुकदमों को निपटाने में समर्थ होगा, झूठी साबित हो चुकी है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि करने से पार्किसन् का नियम लागू हो जाता है। न्याय-प्रशासन के मामले में विशेषज्ञ-क्षेत्रों में, विशाखन की आवश्यकता को अब उत्सुकता से अनुभव किया जा रहा है। कर विधियों के अधीन और श्रम विधियों के अधीन भी, जिस प्रकार मुकदमें उत्पन्न हो रहे हैं, उनको निपटाने के लिए शैक्षिक कार्यकलाप में विशेष कुशलता की आवश्यकता है। यह सुझाव नहीं दिया जा रहा है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश उनको निपटाने में समर्थ नहीं होंगे, किन्तु न्यायापीठों में बार-बार किए जाने वाले परिवर्तनों, राजस्व संबंधी मामलों को निपटाने के लिए वर्ष भर न्यायापीठों की अनुपलब्धता और उच्चतर शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश की अनुवर्ती प्रक्रिया की बाबत किसी ऐसे विशेषज्ञ निकाय द्वारा बेहतर कार्रवाई की जा सकती है जो इस कार्य के लिए अनन्यत: समर्पित हो। इसके दो स्पष्ट फायदे होंगे; (i) विभिन्न न्यायापीठों द्वारा एक ही सिद्धांत की पुनरावृत्ति बन्द हो जाएगी, और (ii) विभिन्न न्यायापीठों के समक्ष बार-बार पूर्व-निर्णयों के प्रोद्धरण से, जिसमें बहुत समय लगता है, बचा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इससे ऐसे मामलों में विचाराधीन सुसंगत सिद्धांतों की निरंतरता, संगति और निश्चितता प्राप्त हो जाएगी। यह एक ऐसा न्यायिक निकाय होगा जिसमें उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के अतिरिक्त विधिविद्, विश्वविद्यालयों के कुलपति, श्रम विधि विशेषज्ञ और कराधान विधि विशेषज्ञ जैसे विधि-तकनीकज्ञ भी होंगे जिन्होंने लंबे समय तक ऐसे विषय में कार्य किया है। यह ऐसे विशेषज्ञों का निकाय होगा जो अपनी विशेषज्ञता के कारण मामलों के निपटारे को गति प्रदान करेंगे।

अध्याय 2

प्रत्यक्ष कर

2.1. आय-कर अधिनियम, 1961 के अध्याय 14 में निर्धारण की प्रक्रिया बढ़ाई गई है। धन-कर अधिनियम, दान-कर अधिनियम, और कंपनी (लाभ) अतिकर अधिनियम में भी निर्धारण के लिए तत्संबंधी उपबंध किए गए हैं। किसी व्यक्ति द्वारा, जिससे विधि के अधीन विवरणी फाइल करने की अपेक्षा की गई है, विवरणी फाइल किए जाने पर, आय–कर अधिकारी निर्धारिती द्वारा संदेय कर के निर्धारण की कार्रवाई प्रारंभ करता है।

2.2. 1961 के अधिनियम की धारा 252 में, न्यायिक और लेखा सदस्यों से मिल कर बने एक अपील अधिकरण के गठन का उपबन्ध है। आयकर अपील अधिकरण, जैसा कि उसके नाम से दर्शित है, एक अपील प्राधिकरण है। सहायक आयुक्त (अपील)/आयुक्त (अपील) के आदेशों के विरुद्ध अपील, अपील प्राधिकरण को की जा सकती है। यह अपील निर्धारिती और राजस्व विभाग दोनों ही कर सकते हैं। अपील अधिकरण को प्रदत्त न्यायिक शक्तियों की परिधि का अनुमान धारा 254 में प्रयुक्त भाषा से लगाया जा सकता है जिसमें यह उपबंध है कि "अपील अधिकरण, अपील के दोनों पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जैसे वह ठीक समझता है।" इस प्रकार अपील अधिकरण तथ्यों के निष्कर्षों और साथ ही, विधि संबंधी प्रश्नों में भी हस्तक्षेप कर सकता है।

2.3. अपील अधिकरण द्वारा विनिश्चय कर दिए जाने पर, या तो निर्धारिती या राजस्व विभाग अपील अधिकरण से अपेक्षा कर सकता है कि वह ऐसे आदेश से उत्पन्न विधि के किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित कर दे। यदि अपील अधिकरण निर्देशित करने के लिए सहमत हो जाता है तो वह मामले का कथन तैयार करेगा और वह धारा 256(1) के अधीन उच्च न्यायालय को निर्देशित करेगा। इसके विपरीत, यदि अपील अधिकरण की यह राय है कि उसके आदेश से विधि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है और इसलिए वह कोई निर्देश करने से इंकार कर देता है तो व्यथित व्यक्ति धारा 256 (2) के अधीन उच्च न्यायालय से निवेदन कर सकता है और यदि उच्च न्यायालय का अपील अधिकरण का विनिश्चय के सही होने के बारे में समाधान नहीं होता है तो वह अपील अधिकरण से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह मामले का कथन उच्च न्यायालय को निर्देशित करे। यदि उच्च न्यायालय निर्देश मंगाने से इंकार कर देता है तो व्यथित व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय का आश्रय ले सकता है। ऐसे कई मामले हैं जिनमें भारत का उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय के विनिश्चय से सहमत नहीं हुआ और अपील अधिकरण को इस निदेश के साथ मामला भेज दिया कि वह मामले का कथन तैयार करके मामला उच्च न्यायालय को निर्देशित करे।

2.4. धारा 257 द्वारा अपील अधिकरण को यह शक्ति प्रदान की गई है कि यदि उसकी यह राय है कि विभिन्न उच्च न्यायालयों के न्यायिक विनिश्चयों में विरोध होने के कारण, यह समीचीन है कि मामला उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाए तो वह मामला सीधे उच्चतम न्यायालय को निर्देशित कर सकता है।

2.5. जब निर्देश कर दिया जाता है तो उच्च न्यायालय विधि के प्रश्न पर सुनवाई करेगा और अपनी राय देगा। निर्देश पर उच्च न्यायालय के विनिश्चय से व्यथित कोई व्यक्ति, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकता है। यदि उच्चतम न्यायालय अपील ग्रहण कर लेता है और विधि का प्रश्न विनिश्चित कर देता है तो वह आय-कर अपील अधिकरण को भेज दिया जाएगा और अधिकरण मामले का निपटान उच्चतम न्यायालय की राय के अनुसार करेगा।

2.6. ऐसे अनेक प्रक्रमों के मूल्यांकन के लिए, जिनसे होकर निर्धारण प्रक्रिया गुजरती है, यह आवश्यक है कि उन प्रक्रमों की गणना की जाए। ये प्रक्रम आय–कर अधिकारी, सहायक अधिकरण (अपील)/आयुक्त (अपील), आय-कर अपील अधिकरण, धारा 256(1) के अधीन निर्देश, धा।

256(2) के अधीन निर्देश, प्रक्रम पर अनुच्छेद 136 के अधीन के उच्चतम न्यायालय को संभावित अपील और तत्पश्चात् उच्च न्यायालय को वापसी। सोपानी रूप में किसी निर्धारण आदेश का पुनर्वालोकन लगभग आठ प्रक्रमों पर हो सकता है। ऐसा कहा जाता है कि तथ्य के प्रश्न पर अपील अधिकरण के निष्कर्ष अंतिम होते हैं और धारा 256 (1) या 256 (2) के अधीन किसी निर्देश में उच्च न्यायालय की सलाह देने संबंधी अधिकारिता विधि के प्रश्न तक सीमित हैं। मोटे तौर पर उक्त कथन सही है, किन्तु यदि किसी ने कर-निर्देश संबंधी कार्रवाई की है, वह जानता है कि नीचे विधि के प्रश्न पर राय लेने के लिए किस प्रकार तथ्य के निष्कर्षों को तोड़ा-मरोड़ा जाता है। अपील अधिकरण द्वारा तैयार किए गए या उच्च न्यायालय द्वारा मांगे गए विधि के प्रश्न पर निर्देश के प्ररूप को ही देखना होता है। इसका आरंभ इसी प्रकार होता है : "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों आदि को देखते हुए"।

2.7. संभवतः इस लंबी-चौड़ी बोझिल प्रक्रिया को छोटे-मोटे उपान्तरों के साथ, यूनाइटिड किंगडम के इंनकमटैक्स ऐक्ट, 1952 के तत्संबंधी उपबंधों से लिया गया है।

2.8. कानूनी अपीलों द्वारा अनुतोष के अतिरिक्त, कर प्राधिकारियों के आदेशों के सही होने के बारे में चुनौती देने के लिए बहुत बड़ी संख्या में रिट-पैटीशनें संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में और अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में फाइल की जाती हैं। सूचना जारी करने के प्रक्रम पर ही अनगिनत रिट पिटीशनें फाइल की गई हैं जिनमें उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का इस आधार पर आवहान किया गया है कि सूचना जारी करना मात्र पूर्णतः अधिकारातीत है। यदि ऐसे मामले को ग्रहण कर लिया जाता है तो आगे कार्यवाही स्वतः रुक जाती है। इस प्रकार प्रारंभिक प्रक्रम पर कार्यवाहियां कई दशकों तक रुकी रहती हैं और यदि अन्ततः रिट पिटीशन रद्द कर दी जाती है तो दशक या दशकों के बीत जाने के पश्चात् सूचना के प्रक्रम से कार्यवाही आरंभ होगी। यदि आरंभ में अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिया जाता है और उच्च न्यायालय सूचना के प्रक्रम पर हस्तक्षेप करने से इंकार कर देता है तो उच्चतम न्यायालय में अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल की जाती है और ऐसे कई मामले हैं जिनमें ऐसी पिटीशन ग्रहण कर ली जाती हैं। साथ ही यह भी देखा गया है कि दलील अन्त में निरर्थक सिद्ध होती है। फिर भी मुकदमें बेईमान पक्षकार अपने प्रतिफल होने वाले विनिश्चय को दशकों तक लटकाए रहते हैं और राजस्व विधियों की पकड़ से अनुचित राहत पाते रहते हैं।

2.9. इस प्रकार दृष्टिपात करते ही यह पता चलता है कि कानूनी रूप से विहित अपीलों के अनगिनत प्रक्रमों, निर्धारण संबंधी कार्यवाहियों को अंतिम रूप देने में विलंब कराने के लिए अपूर्व शक्ति अंतर्निहित है।

2.10. कर-कार्य वाहियों के निपटारे में विलंब और, न केवल उच्च न्यायालयों में बल्कि उच्चतम न्यायालय में भी, बड़ी मात्रा में मामलों के लंबित रहने का एक और कारण भी है। अपील अधिकरण की न्यायापीठें सभी राज्यों में अपनी बैठकें करती हैं। अपील अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध जैसा कि ऊपर पहले कहा गया है, अपील अधिकरण पर अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय को निर्देश के लिए आवेदन किया जा सकता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय निर्देश की सुनवाई करता है और उसका व्ययन सुसंगत विधि को अपनी बुद्धि अनुसार समझते हुए करता है। यह सर्व विदित है कि प्रायः उच्च न्यायालयों में परस्पर मतभेद हो जाता है। ऐसी स्थिति के कारण आय-कर अपील अधिकरण के सदस्यों को जो असुविधा होती है वह कष्टदायी है। अपील अधिकरण के सदस्यों को स्थानांतरित किया जा सकता है। जब कोई सदस्य किसी राज्य की न्यायापीठ में आसीन होता है तो उस राज्य की न्यायपीठ को उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार ही विनिश्चय करना होता है। अपने स्थानान्तरण के पश्चात् जब वह किसी अन्य राज्य में तैनात होता है तब उसे उसी मुद्दे पर विनिश्चय, उस अन्य राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार करना पड़ता है। यदि उन दोनों उच्च न्यायालयों में मतभेद है तो उसे उसी मुद्दे पर, अपने दृष्टिकोण को त्याग कर, परस्पर प्रतिकूल विनिश्चय करने पड़ते हैं। निश्चित रूप से इससे उन्हें असुविधा होती है।

2.11. इस अवांछनीय स्थिति को दिल्ली में अपील अधिकरण की न्यायापीठ के कार्य करने के संदर्भ में, स्पष्ट किया जा सकता है। आय-कर अधिकरण की दो न्यायापीठों ने दिल्ली में बैठकें की। भिन्न-भिन्न न्यायाधीशों की भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर अधिकारिता है, कुछ न्यायाधीशों की नई दिल्ली महानगर क्षेत्र

पर अधिकारिता है। एक न्यायपीठ की अधिकारिता मध्य प्रदेश पर है। एक अन्य न्यायपीठ की अधिकारिता उत्तर प्रदेश के एक भाग पर है। एक न्यायापीठ की अधिकारिता मध्य प्रदेश के एक भाग और उत्तर प्रदेश के एक भाग पर है। अतः जबकि कोई अपील अंतिम उल्लिखित न्यायापी के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और यदि अपील मध्य प्रदेश से होती है तो म० प्र० उच्च न्यायालय का विनिश्चय उस न्यायापीठ पर आबद्धकर होगा। यदि वही न्यायापीठ उत्तर प्रदेश की अपील की सुनवाई कर रही है तो उस पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय का विनिश्चय आबद्धकर होगा और दोनों विनिश्चय परस्पर असमाधेय रूप में विरोधी हो सकते हैं। यदि उसी मुद्दे पर दिल्ली उच्च न्यायालय का विनिश्चय है तो अपील अधिकरण उससे आबद्ध नहीं होगा, यद्यपि उसकी बैठक दिल्ली में हो रही है। इससे विधि के लागू किए जाने में एक प्रकार से कृषिक विघटन उत्पन्न होता है। यह स्थिति आय-कर विधि की स्पष्ट कमी के कारण है क्योंकि मामला उच्चतम न्यायालय में पहुँचने तक ऐसा कोई मध्यवर्ती न्यायिक प्राधिकारी नहीं है जो प्रत्यक्ष कर निधियों के विभिन्न उपबंधों के निर्वचन के बारे में कोई अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य विकसित कर सके। सैद्धांतिक रूप से उच्चतम न्यायालय का मुख्य संबंध सामान्य लोक महत्व के संवैधानिक प्रश्नों या विधि के प्रश्नों से होता है। उसका कार्य विधि के छोटे-छोटे प्रश्नों पर उच्च न्यायालयों के मतभेद को दूर करना नहीं है। किन्तु आज उसे यही भूमिका निभानी पड़ रही है। जब कभी दो उच्च न्यायालयों के बीच किसी छोटे से मुद्दे पर भी मतभेद होता है तो उच्चतम न्यायालय, प्रार्थना की जाने पर अपील करने की विशेष इजाजत प्रदान कर देता है। अतः लंबे समय से इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि कोई ऐसा निकाय होना चाहिए जिसे अखिल भारतीय अधिकारिता प्राप्त हो किन्तु उच्चतम न्यायाल के अधीन हो।

2.12. बांचू समिति ने निर्देश प्रक्रिया समाप्त करने से और उसके स्थान पर कर-न्यायालय स्थापित करने के विचार पर गहराई से चिन्तन नहीं किया। उसने उक्त प्रस्ताव को इस भय से आगे नहीं बढ़ाया कि उसे प्रभावी करने के लिए व्यापक संशोधन अपेक्षित होंगे।

पहले विधि आयोग की 12वीं रिपोर्ट आय-कर अधिनियम के बारे में है। उस समय, आय-कर अधिनियम, 1922 विद्यमान था। इस रिपोर्ट के सुसंगत विषय पर विचार करते हुए, आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि "पहले अपील अधिकरण को अपील करने और तत्पश्चात् आय-कर अधिनियम, 1922 की धारा 66(1) या धारा 66(2) के अधीन विधि के किसी प्रश्न पर उच्च न्यायालय को निर्देश कराने की प्रक्रिया बहुत बोझिल है और इससे अपीलों के निपटारे में तथा निर्धारण को अंतिम रूप देने में अनावश्यक विलंब होता है।[1] उसने अपील अधिकरण को समाप्त करने और उसके स्थान पर तथ्य और विधि दोनों के, प्रश्नों पर, सहायक आयुक्त (अपील) के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था की जाने की सिफारिश की थी[2]। यह प्रतीत होता है कि आय-कर अधिनियम, 1961 के अधिनियमित के समय अपील अधिकरण के समाप्त कर दिए जाने संबंधी सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया था। निर्देश की प्रक्रिया को चालू रखने के साथ-साथ अपील अधिकरण को भी बनाए रखा गया।

2.13. भारत सरकार ने जून, 1977 में प्रत्यक्ष कर विधि समिति नामक एक समिति का गठन किया जिसे आमतौर से चौकसी समिति कहते हैं। अपील अधिकरण संबंधी विचार विमर्श करते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की कि आयकर अधिनियम की धारा 252 का लोप कर दिया जाना चाहिए और अपील अधिकरण के गठन और संरचना के लिए एक पृथक कानून अधिनियमत किया जाना चाहिए[3]। समिति में निर्देश प्रक्रिया की समीक्षा करते हुए समिति का ध्यान विलम्बकारी, कष्टसाध्य निर्देश-प्रक्रिया की ओर गया जिससे कि कर सम्बन्धी मुकदमों के निपटारे में अत्यधिक विलम्ब होता है। समिति ने इसे समाप्त करने की सिफारिश की। समिति ने उच्च न्यायालयों की अधिकारिता समाप्त करते हुए, कर सम्बन्धी मुकदमों में कार्रवाई करने के लिए अखिल भारतीय अधिकारिता वाले एक केन्द्रीय कर न्यायालय के स्थापन की सिफारिश की है।[3] समिति ने यह भी सिफारिश की कि प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय की न्यायापीठें महत्वपूर्ण केन्द्रों में स्थापित की जानी चाहिए। समिति ने यह और

---

1. प्रथम विधि आयोग, 12वीं रिपोर्ट, पैरा 90, पृष्ठ 44।
2. प्रथम विधि आयोग, 12 वीं रिपोर्ट, पैरा 6, पृष्ठ 53।
3. प्रत्यक्ष कर विधि समिति अंतिम रिपोर्ट, अध्याय 6, पैरा 11-6.7 (1978)।

सिफारिश की है कि केन्द्रीय कर न्यायालय के संचालन के लिए उसमें नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में से या उच्च न्यायलय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के पात्र व्यक्तियों में से होने चाहिए। समिति ने केन्द्रीय कर न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा शर्तों, वेतनमान और अन्य विशेषाधिकारों के विषय में सिफारिश की है कि वे उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के समान होने चाहिए[1]। अतः समिति ने सिफारिश की कि प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय को कर विधियों या उनके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न विनिश्चित करने की अधिकारिता सौंपी जानी चाहिए[2]। चूंकि प्रस्तावित केन्द्रीय न्यायालय कानून की ही सृष्टि होगी, अतः यह किसी कर कानून की ही सृष्टि होगी, अतः यह किसी कर-कानून या उसके अधीन बनाए गए नियमों की सांविधानिकता के प्रश्न के संबंध में कार्रवाई करने में असमर्थ हो सकती है। तत्समय प्रचलित स्थिति में कर विधियों के संबंध में कार्रवाई करने वाली न्यायालय प्रणाली की संरचना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता थी। इस सिफारिश को अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया है। इस बीच स्थिति और भी बिगड़ गई है। चौकसी समिति के समक्ष प्रस्तुत बकाया मामलों की स्थिति से तुलना के लिए वर्ष 1984-85 में बकाया मामलों की स्थिति नीचे दर्शित की गई है :

1984-85

उच्च न्यायालय	आरंभिक अतिशेष	संस्थित मामले	निपटारे के लिए कुल मामले	निपटाए गए मामले		बकाया मामले
(क) धारा 256 (2) के अधीन निर्देश आवेदन (उन मामलों में जिनमें आय-कर अपील अधिकरण ने निर्देश करने से इंकार कर दिया है)	7214	2506	9720	2490		7230
(ख) धारा 260 के अधीन मामले (ग्रहण किए गए निर्देश)	24953	3146	28081	1942		26139
(ग) धारा 261 के अधीन याचिकाएं (उच्चतम न्यायालय में अपील के लिए प्रमाणपत्र)	525	240	765	276		489
(घ) रिटें	4116	616	4732	888		3844
						37702
उच्चतम न्यायालय						
(क) धारा 261 के अधीन अपीलें (उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र पर फाइल की गई)	1264	46	1310	4		1306
(ख) विशेष इजाजत याचिकाएं (जहां उच्च न्यायालय ने निर्देश करने से इंकार कर दिया है या अन्य मामलों म)		1346	265	1611	19	1592
(ग) रिटें		335	9	344	8	336
						3234

1. प्रत्यक्ष कर विधि समिति, अंतिम रिपोर्ट, अध्याय 6, पैरा 11-6. 17।
2. प्रत्यक्ष कर विधि, अंतिम रिपोर्ट अध्याय पैरा 11-6. 17।

30-6-1986 को भारत के उच्चतम न्यायालय में बकाया कर अपीलें/याचिकाएं

कर अपीलें	6502	सबसे पुरानी अपील 1972 की है।
कर संबंधी सांवैधानिक मामले	113	सबसे पुरानी रिट याचिका 1970 की है।

2.14. कर संबंधी मुकदमें की दो विशेष बातों की ओर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। आयकर और धन-कर जैसे प्रत्यक्ष कर के मामले में निर्धारिती को प्रत्येक वर्ष विवरणी पेश करनी होती है और अगली विवरणी देय होने तक पूर्ववर्ती वर्षों की बावत निर्धारण साधारणतया पूरा नहीं हो पाता है। यदि निर्धारिती ने कुछ विधिक विवाद उठाए हैं और यदि तथ्य विषयक स्थिति को समझने के सम्बन्ध में कोई विसंगति है तो पूर्ववर्ती वर्ष की कार्यवाहियों के लम्बित रहने के कारण उन्हीं विवादों की पुनरावृत्ति होगी। जब पूर्ववर्ती निर्धारण को अन्तिम रूप दे दिया जाता है और विनिश्चय निर्धारिती के प्रतिकूल होता है तो साधारणतया वह अपील करना चाहेगा। ऐसी अपील का निपटारा होने तक और विवरणियां देय हो जाती हैं तथा इससे मुकदमें की वार्षिक संख्या में बढ़ोतरी ही होती है। यदि मुकदमा उच्चतम न्यायालय तक जाता है तो साल-दर-साल तक चलने वाले मामले औसतन 15 से 20 वर्ष तक लम्बित रहेंगे। इसी दौरान एक ही विवाद से कई अपीलें उत्पन्न हो जाती हैं और यदि उच्चतम न्यायालय, निर्धारिती की दलील, अंतिम रूप से स्वीकार कर लेता है तो सभी पूर्ववर्ती निर्धारण आदेशों को, चाहे वे किसी भी प्रक्रम पर लम्बित हों, उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के अनुरूप संशोधित करना होगा।

2.15. कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत या रजिस्ट्रीकृत समझी जाने वाली किसी कम्पनी या किसी कानून के अधीन स्थापित किसी निगम को अपने तुलनपत्र और लाभ और हानि लेखे को अन्तिम रूप देना ही पड़ेगा तथा अपनी विवरणी फाइल करनी ही पड़ेगी। यदि किसी मुद्दे की बाबत एक ओर कम्पनी और दूसरी ओर राजस्व प्राधिकारी के बीच मतभेद उत्पन्न होता है और मुकदमा और आगे बढ़ता है तो प्रश्न यह उठेगा कि आखिर तुलनपत्र को कितने समय तक अनिश्चितता की स्थिति में रखा जा सकता है। अन्ततोगत्वा, जब उच्चतम न्यायालय, मामले का निपटारा करके कुछ अतिरिक्त दायित्व अधिरोपित कर देता है तो कम्पनी को अपने वित्तीय लेखा में समायोजन करने में गंभीर कठिनाई होगी। **लोहिया मशीन्स लिमिटेड बनाम भारत संघ**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय में उसने आयकर नियम, 1962 के नियम 19क में "लगाई गई पूंजी" पद का और धारा 80ञ में नियम 19क को सम्मिलित करते हुए उसे भूतलक्षी तौर पर 1 अप्रैल, 1972 से प्रभावी करने की बाबत निवचन करने से कई कम्पनियों को 13 वर्ष की मध्यवर्ती अवधि के लिए अपने तुलनपत्र फिर से बनाने पड़ेंगे। उससे नियमित सेक्टर की वित्तीय और आर्थिक योजना अवश्य ही अस्तव्यस्त हो जाएगी।

2.16. उचित समय के भीतर कर संबंधी मुकदमें के अन्तिम रूप से निपटाने की प्रणाली की असफलता, राजस्व और निर्धारिती, दोनों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर देती है। अधिक विलम्ब के परिणामस्वरूप कार्यवाहियों में बहुलता और परिहार्य परेशानियों में वृद्धि होगी। कर संबंधी मुकदमें क वैशिष्ट्य को देखते हुए मन में विचार यह उत्पन्न होना चाहिए कि कर संबंधी मुकदमों के निपटारे के लिए कैसे मंच की व्यवस्था की जाए जो उनका निपटारा शीघ्र कर सके। इस दृष्टि से देखा जाए तो वर्तमान प्रणाली विलम्बकारी और उकता देने वाली है तथा इसके परिणामस्वरूप प्रतिकारक हैं।

2.17. कर संबंधी मुकदमों के निपटारे में विलम्ब होने का एक और भी अनुचित लाभ, जो अपील फाइल करने का प्रधान उद्देश्य बन जाता है, यह होता है कि, यथास्थिति, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ऐसे किसी संदाय या वसूली के विरुद्ध अन्तरिम रोक आदेश पारित कर देते हैं जिसे दो या कुछ मामलों में तीन प्राधिकारी शोध्य विनिश्चित कर चुके हैं। ऐसा अशर्त रोक आदेश अक्सर दे दिया जाता है। यदि अन्ततोगत्वा निर्धारिती हार जाता है तो कर की वसूली के मुकदमें का एक नया दौर शुरू हो जाता है।

1. ए०आई०आर० 1985 सुप्रिम कोर्ट, 421।

2.18. वर्तमान निर्धारण और प्रत्यक्ष कर वसूली संबंधी कार्यवाहियों के कुछ विकृत लक्षणों की ओर ध्यान आकर्षित करने के पश्चात् प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या इन सभी विकृत लक्षणों को दूर किया जा सकता है और क्या इस प्रणाली की इस प्रकार पुनर्संरचना की जा सकती है जिससे कि वह प्रभावी समयबद्ध और परिणामोन्मुखी हो सके ।

2.19. आयोग की आयकर अपील अधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों के साथ हुई चर्चा से और आयकर अपील अधिकरण के पूर्व अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए एक व्यापक टिप्पण से यह प्रकट होता है कि निर्धारण आदेश की तारीख और आयकर अपील निपटाने के लिए अपील अधिकरण द्वारा किए गए आदेश के बीच लगभग तीन वर्ष का समय लग जाता है। वास्तव में विलम्ब, आयकर अपील अधिकरण द्वारा विनिश्चय किए जाने के पश्चात् होता है, जब निर्धारिती या राजस्व विभाग निर्देश के लिए आवेदन करता है और मामला उच्च न्यायालय में पहुंच जाता है। रुकावट धारा 256(1) या धारा 256(2) के अधीन निर्देश के समय होती है क्योंकि उच्च न्यायालय उचित समय के भीतर निर्देश का निपटारा करने में असमर्थ है। मोटे तौर से कर-विशेषज्ञ, प्रख्यात, कर अधिवक्ता और गोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा सेमिनारों में बोलने वालों की एक मत राय यही थी किन्तु उपचारात्मक अध्युपायों के विषय में उनका दृष्टिकोण काफी भिन्न था। सम्बद्ध हितबद्ध व्यक्तियों की सर्वसम्मत यह राय है कि निर्देश प्रक्रिया की उपयोगिता समाप्त हो गई है।

2.20. गहन विचार करने के पश्चात् भी आयोग को, निर्देश-प्रक्रिया जारी रखे जाने के लिए कोई विधिमान्य, संतोषप्रद और अकाट्य कारण नहीं मिले हैं।

2.21. भारतीय विधि में इस प्रक्रिया को तब स्थान मिला था जब औपनिवेशिक ढंग का विधान किया जाता था। यूनाइटेड किंग्डम के आयकर अधिनियम, 1952 (इनकम टैक्स एक्ट, 1952) की धारा 64 निर्धारिती और सर्वेक्षक दोनों को ही यह अधिकार प्रदान करती है कि यदि वे अपील के अवधारण से इस आधार पर असंतुष्ट हों कि उसमें विधि संबंधी भूल हो गई है। तो उनमें से कोई भी अपने असंतोष की घोषणा उन आयुक्तों को कर सकता है जिन्होंने अपील की सुनवाई की है और वह विहित फीस का संदाय करके, आयुक्तों के क्लर्क को संबोधित लिखित सूचना देकर उनसे अपेक्षा कर सकता है कि वे मामले का कथन करें, उस पर हस्ताक्षर करें और उसे उच्च न्यायालय की राय के लिए निर्देशित करें। आयुक्त, ऐसे अनुरोध को स्वीकार करने के हकदार नहीं हैं। साइमन ने इस प्रक्रिया को, यथास्थिति, महाआयुक्तों या विशेष आयुक्तों द्वारा अपील के अवधारण के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार कहा है। यद्यपि कोई अपील, यदि वह धारा 64 के अधीन इस प्रकार वर्णित की जा सकती है, केवल विधि संबंधी अधिकथित मूल पर आधारित अवधारण के विरुद्ध की जा सकती है, तथापि वस्तुतः और सारभूत रूप से, तथ्य संबंधी अवधारण भी अपील की विषय-वस्तु बन सकते हैं। दृष्टांत के लिए, **बामफोर्ड बनाम ओसबोर्न**[1] वाले मामले में वाकआउट साइमन, लार्ड-चांसलर ने मत व्यक्त किया कि जहां आयुक्त सिद्ध या स्वीकृत तथ्यों से तथ्य संबंधी अतिरिक्त निष्कर्ष निकालते हैं वहां उन्हें विधि के इस प्रश्न का भी कथन करना चाहिए कि क्या उनके ऐसे अतिरिक्त निष्कर्ष का समर्थन सिद्ध या स्वीकृत तथ्यों से किया जा सकता है। रूप चाहे जो भी हो, इससे तथ्य संबंधी अवधारण पर पुनः विचार की गुंजाइश हो जाती है। ऐसी स्थिति में विधि का प्रश्न यह है कि क्या सिद्ध या स्वीकृत तथ्य उनके तथ्य संबंधी अतिरिक्त निष्कर्षों का समर्थन कर सकते हैं।" उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों में यह दृष्टिकोण उस समय पूर्णतः प्रकट होता है जब वे "विधि का प्रश्न" गठित करने वाले सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं। जब एक बार तथ्य प्रश्नों के अवधारण पर पुनः विचार करने वाली युक्ति सामने आ जाती है तो सम्पूर्ण अवधारण प्रकटतः पुनर्विचारणीय हो जाता है। अतः किसी अन्य कमी के साथ-साथ इस प्रक्रिया में, मामलों के निपटारे में विलम्ब की और धारा 256(1) और धारा 256 (2) के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता के विस्तार की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है।

2.22. अतः ऐसी लम्बी प्रक्रिया को न्यायोचित सिद्ध करने का औचित्य क्या है। अभी हाल तक सम्पत्ति को इतना पवित्र समझा जाता रहा है कि विधिपूर्ण प्रयोजन के लिए विधिपूर्ण साधनों से भी उससे वंचन हर कीमत पर रोका जाता रहा है। स्वतन्त्रता के हनन से न्यायालय इतने विचलित नहीं होते हैं जितने

1. (1941) 2 आल० ई० आर० 426 ।

संपत्ति में छीने जाने से। ए. के. गोपालन स्वतन्त्रता की खोज में संविधान का उदार निर्वचन प्राप्त नहीं कर सके[1]। आर. सी. कपूर ने (बैंक राष्ट्रीयकरण) सम्पत्ति की खोज में इस प्रवृत्ति को उलटवा दिया[2]। संविधान के अनुच्छेद 31 का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है जहां सामाजिक रूप से लाभप्रद कोई विधान, संविधान के अनुच्छेद 31 और अनुच्छेद 19(1)(च) की कसौटी पर खरा नहीं उतरा है इन दो अनुच्छेदों ने सामाजिक आर्थिक न्याय की प्राप्ति के मार्ग में इतना व्यापक अवरोध उत्पन्न कर दिया था कि अन्ततोगत्वा उन्हें तिलांजलि देनी ही पड़ी। धारा 256(1) और धारा 256 (2) उन्हीं बीते दिनों के अवशेष हैं।

इसके अतिरिक्त, साधारणतया न्यायालयों का रुख कर संबंधी कानूनों का निर्वचन करने में संदेह का लाभ निर्धारिती को देना रहता है। न्यायालय ने तो यहां तक अभिनिर्धारित कर दिया कि कर दायित्व से बचने के लिए वाणिज्यिक क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित कर दिया जाता है कि कर प्रभार वितरित हो जाए, प्रतिषिद्ध नहीं है। करदाता, आय के उद्भूत या उत्पन्न होने से पूर्व ही आय के अपयोजन के लिए कोई युक्ति लगा सकता है। युक्ति की प्रभावोत्पादकता, नैतिकता के तर्क पर नहीं वरन् आयकर अधिनियम के प्रवर्तन पर निर्भर करती है। कर काननों के विधायी व्यादेशों से, शास्ति को जोखिम उठा कर भी, बचा तो नहीं जा सकता है किन्तु उसे विधिपूर्व रूप से घुमाया-फिराया अवश्य जा सकता है।"[3] अवसर कर अपवंचन कर से बचने का ही एकरूप है। यदि कोई संव्यवहार कर से बचने की कोई युक्ति है तो उसे न्यायिक प्रक्रिया का अनुमोदन प्राप्त नहीं होना चाहिए। इसका संकेत पहली बार "वुड पोलिमार लि. बनाम बंगाल होटल्स लि.[4] वाले मामले में दिया गया था। अन्ततः संविधान न्यायपीठ (कांस्टीट्यूशन बैंच) ने मैकडोवेल एण्ड कम्पनी लि. बनाम दि कमर्शियल टैक्स आफिसर[5] वाले मामले में इग्लैण्ड में दिये गए निर्णयों के भूत को एकमत होकर अपने सिर से उतार दिया। यह बात स्वीकार करते हुए भी कि कर के बारे में कोई साम्या नहीं है, यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी सभ्य समाज तभी अस्तित्व में रह सकता है जब वह कर का संदाय अविलंब करे। हाल की यह विचारधारा निर्देश-प्रक्रिया को, जो अब मात्र औपनिवेशिक अवशेष है, समाप्त करने का एक अन्य कारण है।

कराधान विधि संबंधी दृष्टिकोण

2.23. कराधान विधि संबंधी दृष्टिकोण में अगाध परिवर्तन आवश्यक है। जहां कर का अपवंचन बुरा माना गया है वहीं पर उसे विधिक युक्तियों द्वारा परिपुष्ट किया गया है। एक ओर कर-अपवंचक और उसके सलाहकारों, वकीलों और लेखाकारों का विशेषज्ञ दल तथा दूसरी ओर कर संग्रहकर्त्ताओं और उनके शायद कम कुशल सलाहकारों के बीच छिड़े निरन्तर संघर्ष में देश के विख्यात विद्वानों के लगे होने से समाज की विशाल अप्रत्यक्ष हानि हो रही है। (18 माडर्न ला रिव्यू 209 में मास्टर चीटक्राफ्ट द्वारा जैसा बताया गया है)[6] विलम्बकारी प्रक्रिया इन युक्तियों के लिए स्वर्ग बन गई है। विकासोन्मुख समाज को अपनी विकास परियोजनाओं के लिए साधन ढूंढने होंगे। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर, राजस्व के मुख्य स्रोत हैं अतुर उसकी सहायता से राज्य समाज हितकारी क्रियाकलाप कर सकता है। इसलिए कर शीघ्रतया वसूल किए जाने चाहिए। यदि न्यायालय कार्यवाहियां, करों के संदाय में विलम्ब कर का बनती है तो बजट संबंधी प्रक्रिया से कर दायित्व का भार, कपटी प्रवंचकों के कंधों से सीधे-साधे नेक नागरिकों के कन्धों पर आ जाना संभव है[6]। इसलिए जो कुछ जस्टिस होम्स ने कहा है उसे यहां दोहराना आवश्यक है" हम करों का संदाय सभ्य समाज के लिए करते हैं। मैं कर देना चाहता हूं। उनसे मैं सभ्यता क्रय करता हूं"।

2.24. अपील और पुनर्विलोकन के अनेक प्रक्रमों में से एक प्रक्रम कम करने से किसी सीमा तक स्थिति में सुधार संभव है। मानव-चूक से ही अपील की संकल्पना का जन्म हुआ है। इसीलिए अपील न्यायालय को मूल सुधार न्यायालय का नाम दिया गया है। किन्तु कहीं न कहीं इस मूल का अन्त होना

1. ए० के० गोपालन बनाम मद्रास राज्य, 1950 एस० सी० आर० 88 ।
2. आर० सी० कूपर बनाम भारत संघ (1970) 3 उस० सी० आर० 530 ।
3. आयकर आयुक्त बनाम ए० रमन एण्ड कंपनी; 1968 (1) एस सी आर 10 पृष्ठ 15 ।
4. 40 कंपनी मामले 597 (गुजरात उच्च न्यायालय) ।
5. 1985 (3) एस०सी०आर० 791 ।
6. एम० सी० डोवेल एंड कं० बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी; 1985 (3) एस सी आर 791, पृष्ठ 809 ।

चाहिए। किसी न किसी प्रक्रम पर, न्याय निर्णयन प्राधिकारी पर विश्वास करना ही होगा। अनेक बार अपीलों की व्यवस्था करने से त्रुटि रहित विनिश्चय सुनिश्चित नहीं होते। प्रत्येक उच्चतर न्यायालय में विनिश्चियों के उलट दिए जाने से न्याय व्यवस्था में ही संदेह उत्पन्न हो सकता है। इसलिए कुछ प्रक्रमों को समाप्त करना होगा। जो प्रक्रम अति-निष्प्रयोज्य और विलम्बकारी हो उसे सबसे पहले समाप्त करना चाहिए। आयकर अधिनियम की धारा 256 के अधीन निर्देश प्रक्रिया और दान-कर अधिनियम और कंपनी (लाभ) अतिकर अधिनियम के तत्संबंधी उपबंध निकाल दिए जाने योग्य हैं। अतः वे उत्सादित किए जाने चाहिए। इससे कर मुकदमों की उर्ध्वामुखी यात्रा में अनावश्यक दो प्रक्रम समाप्त हो जाएंगे। साथ ही इससे, धारा 257 के अधीन उच्चतम न्यायालय को सीधे निर्देश की प्रक्रिया भी निष्फल हो जाएगी।

2.25. जैसे कि पहले बताया जा चुका है, वर्तमान कर मुकदमों में अनुभव की जाने वाली कमी यह है कि जब तक मामला भारत के उच्चतम न्यायालय में नहीं पहुंचता तब तक उसे अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जाता है। यदि निदेश प्रक्रिया उत्सादित भी कर दी जाती है तो उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप करके उस प्रयोजन को विफल कर सकता है जिसके लिए निर्देश प्रक्रिया उत्सादित की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप, जिसकी राज्य वार अधिकारिता है, कर-विधियों के निर्वचन में विरोध उत्पन्न करता है। ऐसे प्रत्येक प्रकट या वास्तविक विरोध से, उच्चतम न्यायालय के कार्यभार में वृद्धि होती है, क्योंकि किसी अन्य विधि के समान ही कर-विधि भी सम्पूर्ण देश में, अपने निश्चित रूप में लागू होनी चाहिए। अतः, धारा 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता भी उत्सादित की जानी चाहिए ।

केन्द्रीय कर न्यायालय

2.26. कर-विधि के निर्वचन में होने वाले विलम्ब और विरोधों के संभव स्रोत पृथक करके आय-कर अपील अधिकरण से ऊपर के स्तर पर और भारत के उच्चतम न्यायालय से नीचे के स्तर पर एक उपयुक्त मंच का सृजन किया जाना चाहिए, जिसकी अधिकारिता राष्ट्र-व्यापी होगी। अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाले केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना से दो स्पष्ट फायदे होंगे : (1) इससे कर-विधियों के निर्वचन के विषय में अखिल भारतीय स्वरूप का प्रादुर्भाव होगा, और (2) विभिन्न उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों में परस्पर विरोध की, जिसके कारण उच्चतम न्यायालय को कार्रवाई करने के लिए वाध्य होना पड़ता है, समाप्ति हो जाएगी। कुछ और भी अनुषंगिक फायदे होंगे जिनका संदाय में वर्णन किया जा सकता है। उस निकाय के जो वर्ष भर विशिष्ट मुकदमों की बाबत कार्रवाई करता है, दृष्टिकोण में गति और स्थायित्व आ जाएगा। केन्द्रीय कर न्यायालय की न्यायपीठों के बीच मतभेद की संभावना को, केन्द्रीय कर न्यायालय की किसी वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विसम्मति की जांच करके सुगमता से सुलझाया जा सकता है। ऐसे न्यायालय के समक्ष आने वाली गई अपीलों में उत्पन्न होने वाले विधि के समान प्रश्नों पर एक ही निर्णय द्वारा विनिश्चय किया जा सकता है। इस प्रकार विनिश्चय सर्वसम्मत होंगे और उसके समक्ष उत्पन्न होने वाले समान प्रश्नों पर की जाने वाली कार्रवाई सतत और स्थाई होगी। अतः आयकर अपील अधिकरण और उच्चतम न्यायालय के मध्यवर्ती स्तर पर एक केन्द्रीय न्यायालय स्थापित किया जाना चाहिए ।

2.27. केन्द्रीय कर न्यायालय का स्वरूप क्या होना चाहिए? ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में भाग XIV-क जोड़ दिए जाने से एक विश्वास पक्का हो गया है कि समुचित विधान मंडल अनुच्छेद 323 (8) के खण्ड (2) में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में जिनके संबंध में ऐसे विधान मंडल को विधि बनाने की शक्ति है, अधिकरण स्थापित कर सकता है। खण्ड (2) में निर्दिष्ट विषयों में कर का उद्ग्रहण, निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन है। संघ सूची में की प्रविष्टियों से संबंधित किसी कर के उद्ग्रहण, निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन के मामले में समुचित विधान मण्डल संसद् भी हो सकती है। यह निर्विवाद है कि किसी केन्द्रीय कर के उद्ग्रहण, निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन के संबंध में कार्रवाई करने के लिए अखिल भारतीय अधिकारिता रखने वाला कोई अधिकरण स्थापित किया जा सकता है। किन्तु इससे यह प्रश्न समाप्त नहीं हो जाता कि क्या संविधान के ढांचे के अन्तर्गत उसी प्रयोजन के लिए कोई न्यायालय स्थापित किया जा सकता है। और यह भी याद रखना चाहिए कि क्षमता विश्वसनीयता और प्रभाव की दृष्टि से न्यायालय और अधिकरण के बीच मान्य और स्पष्ट अन्तर है ।

2.28. संसद् को आय-कर अधिनियम, दान-कर अधिनियम, धनकर अधिनियम और कंपनी (लाभ) अतिकर अधिनियम, जैसी प्रत्यक्ष विधियां अधिनियमित करने और उनके अधीन करों का उद्ग्रहण, निर्धारण और वसूली करने के लिए तंत्र स्थापित करने की शक्ति है। संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 82,85,86 के अधीन संसद् को आय पर कर, निगम पर कर, कृषि भूमि को छोड़कर आस्तियों के पूंजीगत मूल्य पर कर, व्यष्टियों और कंपनियों पर कर तथा कंपनियों की पूंजी पर कर के उद्ग्रहण के लिए संसद् को शक्ति प्रदान की गई है। जहां संसद् को कर उद्ग्रहण की शक्ति है वहां उसे कर के उद्ग्रहण और वसूली से उत्पन्न विवादों और शिकायतों को निपटाने के लिए तंत्र का उपबन्ध करने की भी शक्ति होती है। यह परिकल्पित केन्द्रीय कर न्यायालय को, पूर्वोल्लिखित करों के उद्ग्रहण, निर्धारण और वसूली से उत्पन्न विवादों और शिकायतों पर कार्रवाई करने की अधिकारिता प्राप्त होगी। संघ सूची की प्रविष्टि 95 निम्नानुसार है :—

> "उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां;"

जब इस प्रविष्टि में न्यायालयों की अधिकारिता और शक्ति की चर्चा की गई है तो उसमें न्यायालयों के सृजन उन्हें शक्ति और अधिकारिता प्रदान करने या उन्हें समाप्त करने की शक्ति भी निहित है। प्रविष्टि 55 द्वारा संसद् को, उच्च न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में कार्रवाई करने की सामर्थ्य प्रदान की गई है। अतः इन सभी प्रविष्टियों के सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि संसद् को विधि द्वारा, केन्द्रीय कर न्यायालय या प्रत्यक्ष कर, वित्त मंत्रालय इसे जो भी नाम देना चाहे, स्थापित करने की शक्ति होगी। निःसंदेह वित्त मंत्रालय के अधिकारियों ने इसे, संविधान के अनुच्छेद 323 ख के अधीन प्रशासनिक अधिकरण के रूप में माना है। आयोग की दृढ़ राय है कि ऐसे केन्द्रीय कर न्यायालय को, कोई अधिकरण न होकर सभी दृष्टियों से अखिल भारतीय अधिकारिता वाला एक अपील न्यायालय होना चाहिए ऐसा लगता है कि जो लोग अनुच्छेद 323 ख के अधीन राष्ट्रीय अधिकरण स्थापित करने के पक्ष में थे वे इस तथ्य को नजर अन्दाज कर गए हैं कि उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त विधान करना आवश्यक है। यदि विधि अधिनियमित की ही जानी है तो अनुच्छेद 323 ख द्वारा परिकल्पित अधिकरण की बजाय केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना करना लाभप्रद होगा। अतः जब प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय को कर विधान की सांविधानिकता के संबंध में विनिश्चय करने की अधिकारिता प्रदान की जानी है तो अधिकरण स्थापित करने से कोई लाभ नहीं होगा। अधिकरण किसी कानून या अधीनस्थ विधान की सांविधानिकता की समीक्षा नहीं कर सकता। यह रास्ता, न्यायालय को अधिकरण में बदलने के आरोप को पूर्णतः विफल कर सकता है। अतः आयोग की दृढ़ राय है कि संसद् के किसी अधिनियम के अधीन केन्द्रीय कर न्यायालय, राष्ट्रीय प्रत्यक्ष-कर न्यायालय स्थापित किया जाए जिसकी अखिल भारतीय अधिकारिता प्राप्त हो।

2.29. यह लगभग सर्वसम्मत राय है कि आय-कर अपील अधिकरण का अस्तित्व अत्यधिक न्यायोचित साबित हुआ है और उसे सौंपे गए दायित्व को उसने अधिकांशतः न्यायसंगत रूप में पूरा किया है। अतः उसे, उसकी प्रादेशिक अधिकारिता के साथ कायम रखा जाना चाहिए। उसे अन्तिम तथ्यान्वेषक प्राधिकारी बना रहना चाहिए ।

2.30. प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय को विधि के प्रश्न पर, आय-कर अपील अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध, अपील ग्रहण करने की अधिकारिता होगी। जैसा कि इस समय उपबंधित है, आय-कर अपील अधिकरण के तथ्य संबंधी निष्कर्ष अन्तिम होंगे। केन्द्रीय कर न्यायालय के समक्ष फाइल की गई प्रत्येक अपील न्यायालय की न्यायपीठ के समक्ष ग्रहण किए जाने के लिए सूचीबद्ध की जाएगी। यदि न्यायपीठ का समाधान हो जाता है कि अपील में विधि का कोई प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है तो उसे ऐसी अपील आरंभ में ही खारिज कर देने की अधिकारिता होगी। यदि ग्रहण किए जाने के समय अपील की सुनवाई करने वाली केन्द्रीय कर न्यायालय की न्यायपीठ का समाधान हो जाता है कि अपील में कोई विधि प्रश्न अन्तर्वलित है, तो उसे ऐसे प्रश्न या प्रश्नों की विरचना करनी चाहिए और अपील उन प्रश्नों के ही विनिश्चय के लिए ग्रहण की जाएगी। इस निमित्त मार्गदर्शन, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 से प्राप्त किया जा सकेगा। अपील की अन्तिम सुनवाई इस प्रकार निश्चित विधि प्रश्न या प्रश्नों तक ही सीमित रहेगी, जब तक कि अपील की सुनवाई करने वाली न्यायपीठ, मामले की परिस्थितियों में, आयकर अपील अधिकरण के निर्णय से उत्पन्न किसी अन्य विधि-प्रश्न को, जिसकी उसके द्वारा समीक्षा आवश्यक है, अनुज्ञात करना उपयुक्त नहीं समझती।

2.31. केन्द्रीय कर न्यायालय में किनको रखा जाएगा, यह प्रश्न प्राथमिक महत्व का है। उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों को केन्द्रीय कर न्यायालय में नियुक्त किया जा सकता है। केन्द्रीय कर न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश सदैव कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है। आय-कर अपील अधिकरण के वे सदस्य, जिन्होंने अपील अधिकरण में कम से कम सात वर्ष सेवा की है, इस अतिरिक्त शर्त के अधीन रहते हुए, केन्द्रीय कर न्यायलय में नियुक्त किए जाने के पात्र होंगे वे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित हों। वे सदस्य, जो उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र होंगे, केन्द्रीय कर न्यायालय की सदस्यता के लिए भी समान रूप से, पात्र होंगे।

2.32. वेतन, परिलब्धियों, पेंशन और छुट्टी के मामले में केन्द्रीय कर न्यायालय के सदस्यों की सेवा के निबन्धन और शर्तें, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बारे में सुसंगत समय पर प्रवृत्त सेवा की शर्तों के समान होंगी। इसी प्रकार, केन्द्रीय कर न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश की सेवा के निबन्धन और शर्तें, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के समान होंगी।

2.33. केन्द्रीय कर न्यायालय में आने के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को आकर्षित करने के लिए कुछ प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। यह प्रोत्साहन सेवानिवृति की आयु 65 वर्ष नियत करके दिया जा सकता है जैसा कि प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम के अधीन किया गया है।

2.34. प्रस्तावित केन्द्रीय कर न्यायालय का मुख्यालय वस्तुतः दिल्ली में होना चाहिए किन्तु संबंधित पक्षकारों को न्याय, उनकी दहलीज पर दिलाने के उद्देश्य से इसकी न्यायपीठें प्रथमतः, अहमदाबाद, मम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे स्थानों में होनी चाहिए।

2.35. उन व्यक्तियों में से कुछ को जिनके साथ आयोग ने विषय से सुसंगत विचार-विमर्श किया, राय थी कि केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करने वाले विधान में, केन्द्रीय कर न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध, उच्चतम न्यायालय को विनिर्दिष्ट कानूनी अपील का, उपबन्ध होना चाहिए। आयोग को इसके लिए कोई औचित्य नहीं मिला। जब भी कानूनी अपील के लिए उपबन्ध किया जाता है, जैसी कि विधि इस समय विद्यमान है, तो अपील अधिकारिक रूप से ग्रहण की जाएगी, यद्यपि वह पूर्णतः तुच्छ हो। सीताराम और अन्य बनाम उ० प्र० राज्य[1] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि ऐसी अपील हल्के-फुल्के ढंग से नहीं निपटा दी जानी चाहिए, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन किया जाता है। अनुच्छेद 136 उच्चतम न्यायालय को वह विवेकिक अधिकारिता प्रदान करता है, जो महत्वपूर्ण कारणों के लिए प्रयोग की जा सकती है। अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय उच्चतम न्यायालय नियमित अपील न्यायालय नहीं होता है। अतः यदि कानूनी अपील के लिए उपबन्ध करने की न तो आवश्यकता है और न ही औचित्य। विधि की किसी त्रुटी को ठीक करने के लिए उच्चतम न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन सदैव अधिकारिता प्राप्त है। इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि केन्द्रीय कर न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय को अपील का कोई उपबन्ध नहीं किया जाना चाहिए।

2.36. केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित हो जाने पर, किसी भी उच्च न्यायालय में लम्बित सभी वर्तमान निर्देश, केन्द्रीय कर न्यायालय को अन्तरित हो जाएंगे।

2.37. केन्द्रीय कर न्यायालय की एक दिलचस्प खास बात, जिस पर बड़ी संख्या में परस्पर विरोधी राय व्यक्त की गई है, इस प्रश्न के संबंध में है कि क्या केन्द्रीय कर न्यायालय को किसी कर-कानून या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या विनियम की सांविधानिकता संबंधी दलील की जांच करने की अधिकारिता होनी चाहिए। यह कल्पना की गई है कि केन्द्रीय कर न्यायालय विभिन्न उच्च न्यायालयों के बदले एक अखिल भारतीय निकाय होगा। इस समय उच्च न्यायालय को किसी कानून या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों की संवधानिक विधिमान्यता क प्रश्न की जाँच करने की अधिकारिता हैं। यदि केन्द्रीय कर न्यायालय को अनुच्छेद 323 ख के अधीन अधिकरण न होकर एक न्यायालय होता है तो उसे, कर कानूनों और उनके अधीन बनाए गए अधीनस्थ विधान की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न की जांच करने की अधिकारिता निर्भय होकर प्रदान की जा सकती है। यदि, जैसा कि वित्त मंत्रालय के अधिकारियों ने सुझाव दिया है, इसे अधिकरण बनाया जाना है तो उसे पूर्वोल्लिखित उपबन्धों

1 ए० आई० आर० 1979 (2) सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स, 1085।

की सांवैधानिक विधिमान्यता की जांच करने की अधिकारिता कभी प्रदत्त नहीं की जा सकती। यही एक अतिरिक्त कारण है कि कोई केन्द्रीय कर न्यायालय होना चाहिए न कि अनुच्छेद 323 ख द्वारा यथापरिकल्पित अधिकरण होना चाहिए। इसका एक और भी लाभ होगा कि वे लोग, जो उच्च न्यायालय की अधिकारिता के उत्सादन के संबंध में शिकायत करेंगे, उन्हें प्रभावकारी रूप में उत्तर दिया जा सकता है। कर कानून की सांवैधानिकता के संबंध कार्रवाई करने के लिए एक समान रूप से समान न्यायालय की स्थापना की गई है।

2.38. वित्त मंत्रालय के अधिकारियों ने आय-कर अपील अधिकरण से निचले स्तर वाले कर प्राधिकारियों की पुनर्संरचना के कुछ सुझावों पर भी विचार किया। इसके लिए पर्याप्त गुंजाइश है क्योंकि जब जीवन से वंचित (मृत्युदंड) करने की बात होती है तो तथ्यों पर केवल एक अपील की जा सकती है जबकि कर संबंधी मुकदमा के मामले में तथ्यों के आधार पर, एक से अधिक अपीलें की जा सकती हैं। किन्तु आयोग ने इस पर विचार नहीं किया है क्योंकि इस समय उसे, जैसा कि इस रिपोर्ट के प्रारम्भ में बताया गया है, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में आने वाले कार्य-भार के प्रश्न पर विचार करना है।

2.39. केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना से, उच्च न्यायालयों में बकाया पड़े मामलों की संख्या कम हो जाएगी और अन्य लम्बित मामले शीघ्र निपटाए जा सकेंगे।

अध्याय 3

अप्रत्यक्ष कर

3.1. सर्वोच्च महत्वपूर्ण और व्यापक राजस्व दिलाने वाले अप्रत्यक्ष कर हैं। सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क केन्द्रीय सरकार को करों से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण राजस्व के 80 प्रतिशत की प्राप्ति, सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क से होती है। सीमा-शुक अधिनियम, 1962 की धारा 12 द्वारा सरकार को, ऐसी दरों पर सीमा-शुल्क उद्ग्रहण करने की शक्ति दी गई है जैसी सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की पहली और दूसरी अनुसूचियों में विनिर्दिष्ट की जाए। इसी प्रकार, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की धारा 3 द्वारा सरकार को नमक को छोड़कर, सभी उत्पाद-शुल्क माल पर, जिसका भारत में उत्पादन और विनिर्माण होता है, उत्पाद शुल्क और भारत के किसी भाग में विनिर्मित या भूमार्ग द्वारा भारत में आयातित नमक पर शुल्क ऐसी दरों पर उद्ग्रहण और संग्रहण की शक्ति दी गई है जैसा पहली अनुसूची में अपवर्णित हैं।

3.2. ऊपर उल्लिखित अधिनियमों में से प्रत्येक अधिनियम में उसके द्वारा यथा प्राधिकृत कर के उद्ग्रहण और संग्रहण के लिए अधिकारी पदाभिहित किए गए हैं, उन्हें शक्तियां प्रदान की गई हैं और ऐसे उद्ग्रहण और संग्रहण की प्रक्रिया विहित की गई है। दोनों अधिनियमों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए उनके अधीन व्यापक नियम बनाए गए हैं। सीमा शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1975 की पहली और दूसरी अनुसूची तथा केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 की पहली अनुसूची का जिनमें क्रमशः भारत में आयातित और भारत से निर्यातित तथा ऐसा उत्पाद-शुल्क माल विनिर्दिष्ट है, जो उत्पाद्-शुल्क हो जाता है, पिछले कुछ वर्षों से व्यापक और निरन्तर संशोधन और पुनरीक्षण किया जाता रहा है तथा उसमें अनेक मदें जोड़ी जाती रही हैं। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सीमाशुल्क और उत्पाद्-शुल्क, केन्द्रीय सरकार के बजट में राजस्व के मुख्य स्रोत हैं। देश में औद्योगिकरण के बढ़ने के साथ-साथ, विभिन्न प्रकार के माल का जिसका भारत में विनिर्माण नहीं किया जाता था या जिसके आयात की आवश्यकता नहीं थी, अब भारत में आयात या निर्माण किया जा रहा है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार का विनिर्मित माल भारत से निर्यात किया जाने लगा है। दोनों अधिनियमों में टैरिफ अनुसूचियों को ऐसे विकास के अनुरूप बना दिया जाता है।

3.3. दोनों ही अधिनियमों में अधिकारियों के एक सोपान का उपबन्ध है जो इन अधिनियमों के कार्यान्वयन और प्रवर्तन से उत्पन्न विवादों और विरोधों से निपटने के लिए सशक्त है। यह रिपोर्ट दोनों अधिनियमों में अपील संबंधी उपबन्धों के क्रम के संबद्ध है।

3.4. सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 128 में यह उपबन्ध है कि यदि उक्त अधिनियम के अधीन सीमा-शुल्क कलक्टर से निम्नतर पंक्ति के किसी सीमाशुल्क अधिकारी के किसी विनिश्चय या आदेश से कोई व्यक्ति व्यथित है तो वह उक्त अधिनियम में विहित परिसीमा अवधि के भीतर कलक्टर (अपील) को अपील कर सकता है। धारा 129 में ऐसे एक अपील अधिकरण के गठन का उल्लेख है, जिसका नाम सीमाशुल्क, उत्पाद्-शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण है तथा जो उतने न्यायिक और तकनीकी सदस्यों से मिलकर गठित होगा जितने वह ठीक समझे। यह अधिकरण, अधिनियम द्वारा उसे प्रदत्त शक्तियों और कृत्यों का प्रयोग करेगा। धारा 129 की उपधारा (2) में अपील अधिकरण के न्यायिक या तकनीकी सदस्य के पद के लिए पात्र होने के लिए अर्हताएं विहित की गई हैं। अपील अधिकरण में एक अध्यक्ष और आवश्यकतानुसार एक या अधिक उपाध्यक्ष होंगे। धारा 129 के द्वारा अपील अधिकरण को, इस धारा में प्रगणित आदेशों के विरुद्ध अपीली अधिकारिता प्रदान की गई है। अपील अधिकरण प्रत्येक अपील की सुनवाई इस प्रकार करेगा मानो उसे, अपील ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर आरम्भ में ही अपील खारिज करने की शक्ति न हो भले ही उसकी यह राय हो कि ऐसी अपील तुच्छ प्रकृति की है। अपील अधिकरण को, अपील के अधीन विनिश्चय से उत्पन्न विधि और तथ्यों के प्रश्नों में हस्तक्षेप करने की व्यापक अधिकारिता है। उसे, यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त साक्ष्य लेने के पश्चात् मामले को, नए सिरे से न्यायनिर्णयन या विनिश्चय के लिए प्रतिप्रेषित

करने की शक्ति है। उसे अपने ही आदेशों को, स्वप्रेरणा से सुधारने या उनका संशोधन करने का अधिकार है तथा यदि सीमा-शुल्क कलक्टर द्वारा या अपील के अन्य पक्षकार द्वारा उसकी कोई भूल उसके ध्यान में लाई जाती है तो उसे पुनः उसी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार है किन्तु इस शक्ति का प्रयोग उस आदेश की, जिसे सुधारा जाना है, तारीख से चार वर्ष की अवधि के भीतर ही किया जा सकेगा। धारा 129ग, अपीलों से निपटने के लिए अपील अधिकरण की न्यायपीठों के गठन के बारे में है। सामान्यतः प्रत्येक न्यायपीठ एक न्यायिक सदस्य और एक तकनीकी सदस्य में मिलकर गठित होगी। इसमें कुछ विनिर्दिष्ट अपीलों की बाबत विशेष न्यायपीठ गठित किए जाने का भी उपबन्ध किया गया है। धारा 129ध द्वारा केन्द्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम, 1963 के अधीन गठित केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड को पुनरीक्षण अधिकारिता प्रदान की गई है। बोर्ड ऐसी अधिकारिता का प्रयोग उस कार्यवाही की वैधता और औचित्य के बारे में अपना यह समाधान करने के लिए कर सकता है जिसमें सीमा शुल्क कलक्टर ने न्याय-निर्णयन प्राधिकारी के रूप में कोई विनिश्चय या आदेश किया है और इस अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, बोर्ड ऐसे कलक्टर को ऐसे विनिश्चय या आदेश से उत्पन्न ऐसे मुद्दों के अवधारण के लिए अपील अधिकरण को आवेदन करने का आदेश दे सकेगा, जो बोर्ड अपने आदेश में विनिर्दिष्ट करे। इसी प्रकार की पुनरीक्षण अधिकारिता सीमाशुल्क कलक्टर को भी प्रदान की गई है जिसका प्रयोग वह अपने अधीनस्थ किसी न्याय-निर्णयन प्राधिकारी के अभिलेख और कार्यवाहियों के संदर्भ में, स्वप्रेरणा से कर सकती है। ऐसी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग ऐसे न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के विनिश्चय या आदेश की तारीख से दो वर्ष की अवधि के भीतर किया जा सकता है। धारा 129ङ में यह उपबन्ध है कि यदि कोई व्यक्ति, किसी ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध अपील करना चाहता है, जिसके विरुद्ध कोई अपील अध्याय 15 के अधीन हो सकती है, तो वह अपील के लंबित रहने तक समुचित अधिकारी के पास, मांगा गया शुल्क या उद्गृहीत शास्ति जमा करेगा। अपील प्राधिकारी को शक्ति है कि वह उक्त निक्षेप से छूट दे दे या सशर्तनिक्षेप करने का निदेश दे।

3.5. धारा 130, सीमाशुल्क कलक्टर को या अपील अधिकरण के समक्ष वाली कार्यवाहियों में अन्य पक्षकार को, उस धारा में विहित फीस के साथ आवेदन करने की शक्ति प्रदान करती है। ऐसे आवेदन द्वारा अपील अधिकरण से यह अपेक्षा की जा सकेगी कि वह ऐसे आदेश से उद्भूत विधि के किसी प्रश्न को उच्च न्यायालय को निर्देशित करे और उक्त धारा में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए अपील अधिकरण ऐसे आवेदन की प्राप्ति के 120 दिन के भीतर ऐसे मामले का एक कथन तैयार करेगा और उच्च न्यायालय को निर्देशित करेगा। अपील अधिकरण निर्देश करने से इन्कार भी कर सकता है यदि उसका समाधान हो जाता है कि उसके ऐसे किसी आदेश से ऐसा कोई विधि का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है जिसे उच्च न्यायालय को निर्देशित करना अपेक्षित हो। संक्षेपतः धारा 130 के अधीन विहित प्रक्रिया, आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 256 (1) और (2) के अधीन विहित प्रक्रिया के सदृश्य है जिसकी चर्चा इस रिपोर्ट के अध्याय 1 में व्यापक रूप से की गई है। धारा 130क आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 257 के समरूप है जिसके अधीन अपील अधिकरण को, उस धारा में उल्लिखित परिस्थितियों में भारत के उच्चतम न्यायालय को सीधे निर्देश करने की शक्ति दी गई है। धारा 130ङ में, उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध भारत के उच्चतम न्यायालयों को अपील की जाने का उपबंध है।

3.6. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम में अध्याय 6क, 1980 के संशोधन अधिनियम सं० 44 द्वारा जोड़ा गया है और 11 अक्तूबर, 1982 से प्रभावी किया गया है। धारा 35 में कलक्टर (अपील) का उल्लेख किया गया है जिसे ऐसा कोई व्यक्ति, जो उक्त अधिनियम के अधीन केन्द्रीय उत्पाद् शुल्क कलक्टर से निम्नतर पंक्ति के किसी केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिकारी द्वारा दिए गए किसी विनिश्चय या आदेश से व्यथित है, ऐसे विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील कर सकता है। धारा 35क में अपीलों की सुनवाई की प्रक्रिया विहित की गई है। धारा 35ख में उस अपील अधिकरण को अपीलें करने का उपबन्ध है जिसे सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 129 के अधीन गठित सीमाशुल्क, उत्पाद्शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण के रूप में परिभाषित किया गया है। अपील अधिकरण के विनिश्चय के पश्चात्, धारा 35छ के अधीन उच्च न्यायालय को निर्देश करने और धारा 35ञ के अधीन उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध भारत के उच्चतम न्यायालय को अपील करने का उपबन्ध है।

3.7. स्वर्ण (नियंत्रण) अधिनियम, 1968 की धारा 81 में उस धारा में प्रगणित आदेशों के विरुद्ध, उस अपील अधिकरण को अपील करने का उपबन्ध है तो सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 129 के अधीन यथा गठित सीमाशुल्क, उत्पाद्शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण है। धारा 82ख, सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130 और केन्द्रीय उत्पाद्शुल्क और नमक अधिनियम की धारा 35छ

के समरूप है, जिसमें अधिकरण द्वारा उच्च न्यायालय को निर्देश की प्रक्रिया का उपबन्ध है। धारा 82ग, सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 130क के समरूप है जिसके अधीन अधिकरण को, उस धारा में उल्लिखित परिस्थितियों में, उच्चतम न्यायालय को सीधे निर्देश करने की शक्ति दी गई है।

3.8. सीमाशुल्क, उत्पाद्शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण 16 अक्तूबर, 1982 को स्थापित किया गया। इसके पास, लम्बित मामलों का ढेर लगा हुआ है। मोटे तौर पर 31 मार्च, 1986 को 25,000 अपीलें लम्बित थीं।

3.9. अपील अधिकरण की संकल्पना वही है जो आय-कर अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की थी और सुसंगत कानूनों के अधीन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के लिए समान निर्देश प्रक्रिया विहित की गई है। आय-कर अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की कई न्यायपीठें हैं किन्तु सीमाशुल्क, उत्पाद्शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण की न्यायपीठें मुंबई, मद्रास और कलकत्ता में ही स्थापित की गई हैं और उसका मुख्यालय दिल्ली में है। अपील चाहे दिल्ली में फाइल की जाए और उसकी सुनवाई और निपटारा दिल्ली में ही न्यायपीठ द्वारा किया जाए, उसमें निर्देश, यदि कोई है, उसी राज्य के उच्च न्यायालय को किया जाएगा जिससे अपील अधिकरण के समक्ष अपील आई है। (सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 131ग देखिए)। इस समान्तर प्रक्रिया का परिणाम वही है जो आय-कर अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण का है। दिल्ली में सीमाशुल्क, उत्पाद् शुल्क और स्वर्ण (नियंत्रण) अपील अधिकरण की न्यायपीठ दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि से अपीलों की सुनवाई कर सकती है। पूर्वोक्त उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों के आधार पर, न्यायपीठ को उस राज्य को देखते हुए, जिससे अपील आई है और जिसके संदर्भ में उस राज्य के उच्च न्यायालय ने अपना विनिश्चय दिया है, एक ही मुद्दे पर परस्पर विरोधी विनिश्चय देने होंगे। अपील अधिकरण किसी अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का उपबंध नहीं कर सकेगा क्योंकि उसे, विभिन्न उच्च न्यायालयों की राय में विरोध को देखते हुए, परस्पर विरोधी और प्रतिकूल विनिश्चय देने होंगे। जब तक मामला उच्चतम न्यायालय में नहीं पहुंचता, तब तक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य विकसित नहीं होगा। अत: प्रत्यक्ष करों के लिए दिए गए कारण ही, अप्रत्यक्ष करों के लिए केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करने के लिए भी, यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे। ऐसे केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना से जो फायदे होंगे वे, उसकी स्थापना के कारण होने वाले खर्च की तुलना में बहुत अधिक होंगे। यदि अध्याय 2 में उल्लिखित कारणों से एक बार केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित कर दिया जाता है तो उसमें उल्लिखित विभिन्न कानूनों के विभिन्न उपबन्धों के अधीन विहित निर्देश प्रक्रिया समाप्त करनी होगी। निर्देश प्रक्रिया के बारे में प्राय: माना गया है कि मुख्यतया उसी के कारण विलम्ब होता है। इससे एक नुकसान और भी होता है कि निर्देश चाहने वाला निजी पक्षकार, यह आवेदन करेगा कि वसूली की कार्यवाही को अन्तरिम रोक आदेश द्वारा तब तक के लिए रोक दिया जाए जब तक निर्देश का निपटारा नहीं हो जाता। निर्देशों के निपटारे में बेहद विलम्ब होता है। इस अवधि के दौरान राजस्व की वसूली न हो पाने के कारण बजट संबंधी प्राक्कलनों में व्यवधान पड़ जाता है। विलम्ब और राजस्व की वसूली में रुकावट के प्रश्न पर वित्त मंत्रालय द्वारा संकलित एक नक्शे से निम्नलिखित स्थिति प्रकट होती है :—

(लाख रुपयों में)

	सीमाशुल्क		केन्द्रीय उत्पादशुल्क	
	मामलों की सं.	वसूल न की जा सकी रकम	मामलों की सं.	वसूल न की जा सकी रकम
उच्चतम न्यायालय	925	4,178.19	2181	78,288.99
उच्च न्यायालय	6974	21,640.30	5389	2,77,489.23
	7899	25,818.49	7570	3,55,778.22

	मामलों की संख्या	रुकी हुई रकम
सीमाशुल्क और केन्द्रीय उत्पाद्शुल्क का कुल जोड़	7899	25818.49
	7570	355778.22
उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय (दोनों)	15469	381596.71

अप्रत्यक्ष कर संबंधी लगभग 15,500 मामले उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में लम्बित हैं जिससे मोटेतौर पर 3816.17 करोड़ रुपए का राजस्व रुका पड़ा है। आनुषंगिक रूप से यह भी उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार ने पैरवी करने में, सीमाशुल्क अधिनियम के अधीन उद्भूत मामलों के लिए 22,96,000 रुपए और केन्द्रीय उत्पादशुल्क और नमक अधिनियम के अधीन उद्भूत मामलों के लिए 22,17,000 रुपए खर्च किए हैं। यह जानकारी उच्च न्यायालयों को किए जाने वाले निर्देश की प्रक्रिया, जो अब पूर्णत: अनुपयोगी हो गई है, समाप्त करने की दलील को और भी पुष्ट करती है।

3.10. वित्त मंत्रालय में अप्रत्यक्ष कर संबंधी कार्य करने वाले अधिकारियों के साथ हुए विचार-विमर्श से यह प्रकट हुआ कि सीमाशुल्क, केन्द्रीय उत्पादशुल्क और राजस्व (अपील) अधिकरण की स्थापना का उपबन्ध करने के लिए एक विधेयक का एक प्रारूप तैयार किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस संपूर्ण विवेचन पर अनुच्छेद 323ख(2) के उपबन्धों का प्रभाव पड़ा है। इस रिपोर्ट के अध्याय 2 में, प्रत्यक्ष करों के लिए केन्द्रीय कर न्यायालय, न कि अधिकरण की स्थापना की सिफारिश करने के लिए दिए गए विस्तृत कारणों के आधार पर आयोग का यह दृढ़ विचार है कि प्रारूप विधेयक में विनिर्दिष्ट प्रकार का कोई अधिकरण स्थापित न करके, इस रिपोर्ट के अध्याय 2 में निर्दिष्ट बातों के आधार पर अप्रत्यक्ष करों के लिए एक केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित किया जाना चाहिए। यद्यपि दोनों दशाओं में ऐसे केन्द्रीय कर न्यायालय की शक्ति और अधिकारिता समान होंगी तथापि वे पृथक और सुभिन्न होंगे क्योंकि उनके बीच कोई कार्य साम्य नहीं होगा।

3.11. प्रारूप विधेयक के खण्ड 16 में यह उपबन्ध है कि केन्द्रीय कर न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। इस रिपोर्ट के अध्याय 2 में विनिर्दिष्ट कारणों के आधार पर, इस उपबंध का निकाला जाना आवश्यक है। वास्तव में इस विधेयक का, इस रिपोर्ट में उल्लिखित विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, नए सिरे से प्रारूपण किया जाना चाहिए।

अध्याय 4

आयात निर्यात संबंधी मामले

4.1. विधि और न्याय मंत्री ने आयात, निर्यात मामलों के निपटारे के लिए एक विशेष न्यायालय की स्थापना की साध्यता की समीक्षा करने के लिए आयोग से अनुरोध करते हुए, भारत सरकार के वाणिज्य और पूर्ति मंत्रालय द्वारा स्थापित भारतीय निर्यात महासंघ (फेडरेशन ऑफ इंडियन एक्सपोर्ट) के पश्चिम क्षेत्र के अध्यक्ष, श्री रामू एस. देवरा से उन्हें प्राप्त एक पत्र अपने तारीख 5 मई, 1986 के पत्र के साथ आयोग को भेजा था। पत्र अग्रेषित करते हुए, विधि और न्याय मंत्री ने आयोग से अनुरोध किया था कि वह कर न्यायालय के बारे में सिफारिशें करते समय, उक्त पत्र में प्रस्तुत किए गए सुझावों पर विचार करे। आयोग ने तारीख 14 मई, 1986 के अपने उत्तर में, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के लिए एक केन्द्रीय कर न्यायालय की स्थापना की साध्यता पर विचार करते समय पूर्व उल्लिखित पत्र के सुझावों की समीक्षा करने के लिए अपनी सहमति व्यक्त की थी। रिपोर्ट का यह भाग उसी से संबंधित है।

4.2. आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियमन, 1947 का अधिनियमन, आयात और निर्यात प्रतिषिद्ध, निर्बंधित या अन्यथा नियंत्रित करने और उनसे संबंधित विषयों में कार्रवाई करने के लिए केन्द्रीय सरकार को शक्ति प्रदान करने के लिए, किया गया था। अधिनियम की धारा 3 द्वारा केन्द्रीय सरकार को, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा सभी मामलों में या विनिर्दिष्ट वर्गों के मामलों में और ऐसे अपवादों के अधीन रहते हुए, यदि कोई हों, जो आदेश द्वारा या उसके अधीन किए जाएं, निम्नलिखित को प्रतिषिद्ध करने, निर्बंधित करने या अन्यथा नियंत्रित करने के लिए उपबंध करने की शक्ति प्रदान की गई है :—

(क) पोत के सामग्री भण्डार के रूप में किसी विनिर्दिष्ट वर्णन के माल के आयात, निर्यात, तटवर्ती वहन या लदाई;

(ख) किसी विनिर्दिष्ट वर्णन के माल का, जिसका उस पोत या वाहन से हटाए बिना, जिसमें उसका वहन किया जा रहा है, भारत के बाहर ले जाया जाना आशयित है, भारत में किसी पत्तन या स्थान में ले जाना। यह अधिनियम भारत रक्षा नियम के नियम 84 को प्रतिस्थापित करता है, जिसके अधीन आयात और निर्यात पर नियंत्रण लगाया गया था और जिसे बाद में एमरजेन्सी प्राविजन्स (कन्टीनुएन्स) आर्डिनेंस, 1946 के अधीन, जो 24 मार्च, 1947 को समाप्त हो गया था, विस्तारित किया गया था। आयात-निर्यात को विनियमित करने की शक्ति का उद्देश्य युद्धकाल से शान्तिकाल की स्थितियों में संक्रमण के दौरान देश की अर्थ-व्यवस्था में पड़ने वाले व्यवधानों को रोकना था। उसके अतिरिक्त, शान्तिकाल के दौरान भी, नियोजित रीति में अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए आयात और निर्यात पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। धारा 4ख द्वारा ऐसे किसी भी परिसर में, जिसमें आयातित माल या सामग्री, जिसका अधिनियम के अधीन अधिग्रहण किया जा सकता है, के रखे या छिपाए जाने का संदेह है, प्रवेश करने और उसका निरीक्षण करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 4ग तथा 4घ द्वारा, क्रमशः उनमें उल्लिखित परिस्थितियों में, तलाशी लेने और आयातित माल या सामग्री के अभिहरण की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 4छ किसी भी आयातित माल या सामग्री के अधिहरण के लिए शक्ति प्रदान करती है, जिसके संबंध में अनुज्ञप्ति या प्राधिकार पत्र जिसके अधीन वह आयात किया गया है किसी शर्त, ऐसे माल या सामग्री आदि के उपयोग या वितरण के संबंध में उल्लंघन किया है या किया जा रहा है। धारा 4ज में शास्ति के उद्ग्रहण के लिए उपबंध है। धारा 4ट में, अधिहरण या शास्ति के उद्ग्रहण की बाबत न्याय-निर्णयन के लिए उपबन्ध है। धारा 4ड में, मुख्य नियंत्रक या अपर मुख्य नियंत्रक के विनिश्चय के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार को और किसी अन्य दशा में मुख्य नियंत्रक को या यदि वह ऐसा निदेश देता है तो अपर मुख्य नियंत्रक को अपील किए जाने का उपबन्ध किया गया है। धारा 4ढ द्वारा मुख्य नियंत्रक को पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान की गई है। यही अधिनियम की संक्षिप्त रूपरेखा है।

4.3. देश के उद्योगीकरण की प्रक्रिया में तेजी आने से, आयात और निर्यात की मात्रा और माल की किस्मों में कई गुनी वृद्धि हो गई है। विभिन्न किस्म के माल के निर्यात और आयात के नियंत्रण के लिए कई आदेश जारी किए गए हैं और एक ओर निर्यातकर्ता और/या आयातकर्ता तथा दूसरी ओर अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के बीच माल की प्रकृति, नियंत्रण आदि की सीमा के संबंध में अनेक विवाद उत्पन्न हो गए हैं तथा उत्पन्न होने की संभावना है। दृष्टान्तस्वरूप, जब चांदी के निर्यात पर पूर्ण वर्जन लगा दिया गया था तो वर्जन आदेश पर यह आक्षेप किया गया था कि वह संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार का अतिलंघन करता है। यह प्रश्न भी उठाया गया था कि क्या वर्जन के पीछे जो प्रशासनिक नीति है वह पूर्णतः न्याय है[1]। लोगों के आयात किए जाने पर यह प्रश्न उठा कि क्या वह प्रतिषिद्ध माल है और क्या वह शुल्क्य भी है[2]। ऐसे अनेकों दृष्टांत दिए जा सकते हैं।

4.4. जब कभी एक ओर आयातकर्ता या निर्यातकर्ता और दूसरी ओर अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के बीच विवाद उत्पन्न होता तो उस पर न्यायनिर्णयन, माल के अधिहरण या शास्ति के उद्ग्रहण का आदेश देने के पूर्व, माल स्वामी को सुनवाई का अवसर दिए जाने के पश्चात् किया जाएगा। अधिनियम की (धारा 4ट और 4ठ देखें)। न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के विनिश्चय से व्यथित कोई भी व्यक्ति, धारा 4ड में यथाउपबंधित अपील कर सकेगा। व्यथित व्यक्ति या तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब ले सकेगा या अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकेगा। न्यायनिर्णयन और अनुतोष के लिए यह वर्तमान व्यवस्था यह है कि पहले न्यायिक कल्प प्राधिकारियों द्वारा कार्रवाई की जाए और तत्पश्चात् न्यायिक प्राधिकारियों का आश्रय प्राप्त किया जाए।

4.5. आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947, सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 और पुरावशेष (निर्यात) नियंत्रण अधिनियम, 1947 जैसे निर्यात या आयात के संबंधी कार्रवाई करने वाले कानूनों के समान ही एक कानून है। ऐसे ही अन्य अनेक उपबन्ध हैं, जिनकी यहां चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

4.6. सरसरी तौर पर देखने से यह प्रकट होगा कि जैसे-जैसे निर्यात और आयात बढ़ने के साथ-साथ एक ओर अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों और दूसरी ओर निर्यातकर्ता/आयातकर्ताओं के बीच विवादों का क्षेत्र और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। विधि के उल्लंघन पर माल के अधिहरण या शास्ति के उद्ग्रहण की शक्ति एक कठोर उपबंध है किन्तु अनावश्यक माल के अन्धाधुंध निर्यात की प्रवृत्ति को, जिससे वैसे माल की कमी उत्पन्न होती है और अर्थ-व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त होती है, रोकना भी समान रूप से, लाभदायक है। इसके अतिरिक्त जब तक विवाद का निपटारा नहीं हो जाता, माल निर्मुक्त नहीं किया जाता है। यदि माल अत्यावश्यक कच्ची सामग्री है तो प्रक्रिया पूरी होने तक उसके परिदान को रोके रखने से तैयार उत्पादों के विनिर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। परिसंघ ने, जिसके पत्र पर विधि आयोग को विशेष न्यायालय की स्थापना के प्रश्न की समीक्षा करने के लिए आमंत्रित किया गया था, कहा है कि आयात/निर्यात नीतियों के बारे में आयात व्यापार नियंत्रण संगठन, सीमा-शुल्क, न्यायपालिका जैसे भिन्न-भिन्न प्राधिकारियों का और भारतीय रिजर्व बैंक और आयातकर्ताओं/निर्यातकर्ताओं का भिन्न मत हो जाता है। इससे आयात/निर्यात की निकासी में विलम्ब हो जाता है और आयात/निर्यात पर काफी प्रभाव पड़ता है और उसके परिणाम-स्वरूप मुकदमेबाजी होती है। पत्र के लेखक ने **भेड़ की चर्बी** के आयात के बारे में उत्पन्न हुए विवाद और परिणामस्वरूप आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक द्वारा जारी किए गए वर्जन आदेश के प्रति निर्देश किया है। उसके अनुसार कुछ सारणीबद्ध मदों के मामले में भी विवाद उत्पन्न होते हैं। ऐसे विवाद, हीरों, बादामों आदि के बारे में उत्पन्न हुए थे। उसने बताया है कि ऐसे विवादों के कारण, परेषण लगातार 4-5 मास के लिए रुके पड़े रहे हैं और उच्चतम न्यायालय उन अनुज्ञप्तियों की, जिनके जारी किए जाने के लिए उसने स्वयं आदेश किए थे, प्रविषय के स्पष्टीकरण के लिए ही 4-5 मास ले लेता है। उसके अनुसार इस अवधि के दौरान, आयातकर्ताओं को बी पी टी और आधान निरोध के लिए दोहरा डेमरेज वहन करना पड़ता है। उसने यह भी बताया है कि यदि वस्तु विनश्कर प्रकृति की है तो उससे क्वालिटी में निश्चय ही गिरावट आती है परिणामतः राष्ट्रीय हानि होती है। ये अवश्य ही महत्वपूर्ण विचारणीय मुद्दे हैं।

---

1. भारत संघ बनाम दमानी एंड कं० (ए० आई० आर० 1980 एस सी 1949)।
2. राम कृपाल भगत बनाम बिहार राज्य (ए आई आर 1970 एस सी 951)।

4.7. यदि आयात और निर्यात अधिनियम, 1947, सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के निकट सहयोग से प्रवर्तित किया जाता है तो सीमा-शुल्क अधिनियम के उपबन्धों के संबंध में कार्रवाई करने वाले विशेषज्ञ आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 के अधीन उत्पन्न प्रश्नों के बारे में भी कार्रवाई करने में सहायता दे सकेंगे। अतः आयोग का मत है कि इस रिपोर्ट के अध्याय 3 में अप्रत्यक्ष करों के लिए यथापरिकल्पित केन्द्रीय कर न्यायालय को, यथास्थिति, मुख्य नियंत्रक या अपर मुख्य नियंत्रक के विनिश्चय के विरुद्ध भी कार्रवाई करने की शक्ति होनी चाहिए और धारा 4ढ के अधीन केन्द्रीय सरकार को अपील उपबंध समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इसलिए आयोग का मत है कि अप्रत्यक्ष करों के लिए केन्द्रीय कर न्यायालय को मुख्य नियंत्रक या अपर मुख्य नियंत्रक के उस विनिश्चय के विरुद्ध भी अपील सुनने की अधिकारिता प्राप्त होनी चाहिए, जो उसने, यथास्थिति, अपील प्राधिकारी या न्याय-निर्णयन प्राधिकारी के रूप में दिया है और वह इस अपील में उसी प्रकार कार्रवाई करेगा जैसे कि वह सीमा-शुल्क अधिनियम या केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और नमक अधिनियम के अधीन अपीलों में करता है। इससे एक समान विवाद्यकों में कार्रवाई करने के लिए एकीकृत तंत्र का उपबंध हो सकेगा और आयात और निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 के अधीन उत्पन्न विवादों का निपटारा भी कम समय में किया जा सकेगा।

ह०
1. (डी. ए. देसाई)
अध्यक्ष

ह०
2. (श्रीमती वी. एस. रमा देवी)
सदस्य सचिव

तारीख : 28 अगस्त, 1986

86-M/P(N)566M—LJ&CA—510—25.7.87—GIPS

पी एल डी 92 सी एक्स बी(एच)
510—1987 (डी एस के-IV)

मूल्य — देश में– रु० 22.50; विदश में—£ 2.62 या $ 8.10

1987

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, शिमला–171004 द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054 द्वारा प्रकाशित ।